## जेएनयू प्रकरण पार्ट : 4

# वाम–कांग्रेस गठजोड़ की खुली पोल

J N U PRASHASAN

SPMRF

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

# जेएनयू प्रकरण पार्ट–4 :
# वाम–कांग्रेस गठजोड़ की खुली पोल

**संकलनकर्ता**
शिवानन्द  द्विवेदी

**Cover Design & Layout**
Vikas Saini

SPMRF
पराक्रमयुता प्रज्ञा राष्ट्राभ्युदयसाधिका
Wisdom with valour brings glory to the nation

---

**डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी**
**रिसर्च फाउंडेशन**

# अनुक्रमणिका

| क्र.सं | लेख | पेज न. |
|---|---|---|
| 01 | प्राक्कथन | 4 |
| 02 | आजादी का खतरनाक खेल<br>– **मिहिर भोले** | 6 |
| 03 | देश की कीमत पर राजनीति<br>– **जगमोहन सिंह राजपूत** | 8 |
| 04 | किताब जलाने वाले छात्र<br>– **राजीव सचान** | 10 |
| 05 | कैसी आजादी चाहिए कन्हैया को ?<br>– **सीता** | 12 |
| 06 | पैर बांधकर नहीं दौड़ सकता वामपंथ<br>– **सूर्यप्रकाश** | 14 |
| 07 | भारत माता की जय से दिक्कत क्यों है?<br>– **हृदय नारायण दीक्षित** | 18 |
| 08 | उस सुबह जैसा मैंने देखा...<br>– **हेमंत पाणिग्रही** | 20 |
| 09 | दकियानूसी कैसे हो गयी देशभक्ति?<br>– **प्रो. गिरीश्वर मिश्र** | 22 |
| 10 | राष्ट्रीय विमर्श का अपहरण<br>– **बलवीर पुंज** | 24 |
| 11 | खुद से जरुरी सवाल पूछने होंगे हमे<br>– **जगमोहन सिंह राजपूत** | 26 |
| 12 | इकहरी सोच से कैसे निकलेगा रास्ता ?<br>– **क्षमा शर्मा** | 28 |
| 13 | जेएनयूः नहीं थम रहा हो–हल्ला<br>– **ब्रजेश कुमार** | 30 |
| 13 | राष्ट्रघात है विरोध की ऐसी राजनीति<br>– **प्रदीप सिंह** | 32 |
| 14 | Blood in the red salute: Kanhaiya Kumar should seek azadi from factual and historical howlers too<br>– **Vaibhav Purandare** | 34 |
| 15 | Forget Che, Kanhaiya not even a Kejriwal if he insults Indian Army<br>– **Vipin Damodharan** | 36 |
| 16 | AZADI BRIGADE AND ITS OPEN, COVERT, BACKERS<br>– **A. Suryaprakash** | 39 |
| 17 | IIT-IIMian asks 10 Questions for Kanhaiya lovers<br>– **Sanjeev Newar** | 42 |
| 18 | SUBJUGATE-INDIA TO BREAK-INDIA<br>– **Anirban Ganguly** | 45 |

# प्राक्कथन

अब लगभग यह स्पष्ट हो चुका है कि जेएनयू प्रकरण में वामपंथियों सहित पूरा मोदी-विरोधी खेमा एक्सपोज हो गया है। भाजपा-नीत केंद्र सरकार द्वारा किये जा रहे लोकहितकारी विकास कार्यों से परेशान विपक्षी खेमा विरोध के मुद्दे तलाश  रहा है। भ्रष्टाचार, जन से जुड़ी समस्याओं पर उसे  मुद्दा  नही मिल रहा, लिहाजा कांग्रेस इस समय छटपटाहट में है क्योंकि उनके चिरयुवा नेता राहुल गांधी का कद भी लागातार राजनीति के मैदान में बौना साबित होता जा रहा है। अब वे भी राजनीतिक रोटी सेंकने के लिए दूसरे के कंधों का सहारा ले रहे हैं। इसका ताजा उदाहरण असम चुनाव है। असम में अगले  महीने विधान सभा चुनाव होने हैं। चुनाव में कांग्रेस ने जो पोस्टर लगायें हैं उनमे देश द्रोह के आरोपी एक कम्युनिस्ट छात्र कन्हैया कुमार की तस्वीरें हैं। वहीँ दूसरी तरफ कांग्रेस के बड़े नेता शशि थरूर ने कन्हैया से भगत सिंह की तुलना कर दी है। क्या इसका यह अर्थ निकाला जाय कि अब कांग्रेस का भरोसा अपने नेतृत्व से उठ गया है और वो कन्हैया को राहुल गांधी से बड़ा नेता मानने लगी है? यह सवाल इसलिए क्योंकि चुनावों में कांग्रेस राहुल गांधी से ज्यादा भरोसा कन्हैया कुमार पर जताती दिख रही है। इसमें कोई शक नही कि वर्तमान राजनीति में विपक्ष एक अजीब छटपटाहट के दौर से गुजर रहा है। विपक्षी राजनीतिक दल के रूप में कांग्रेस नेतृत्व के सभी चेहरे मोदी की आभा के आगे फीके साबित हो चुके हैं। राजनीति का वर्तमान दौर मोदी सरकार द्वारा किये जा रहे अभूतपूर्व विकास का दौर है। यानी, मोदी इज मुद्दा, मुद्दा इज मोदी। आप या तो मोदी के साथ हैं अथवा मोदी के खिलाफ हैं। राजनीति में बीच का कोई रास्ता शेष नही बचा है। आज कांग्रेस राजनीति की ही नही बल्कि आत्मविश्वास की लड़ाई भी हार चुकी है। कांग्रेस के नेताओं का विश्वास न तो अपने किसी नेता में रहा और न ही अपने नेतृत्व से ही कांग्रेस में कोई उम्मीद दिख रही है। यह एक ऐसी छटपटाहट का दौर है जिसमे हताशा और भ्रम पूरी पार्टी में पसरा हुआ है।

हताशा और भ्रम के इस दौर में कांग्रेस की हालत ऐसी हो गयी है कि उसके नेता अब टीवी मीडिया के गमले में उगे एक कम्युनिस्ट छात्र नेता को भगत सिंह बताने लगे हैं। हालांकि इसके पहले पहले खुद कांग्रेस के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष और अघोषित युवराज राहुल गांधी तक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता और जेएनयू के छात्र संघ अध्यक्ष कन्हैया कुमार का समर्थन कर चुके हैं और मुलाकात भी कर चुके हैं। आश्चर्य है कि एक राष्ट्रीय पार्टी के पास चेहरों का ऐसा अकाल भी क्या पड़ा है जो उसे देशद्रोह के आरोपी एक कम्युनिस्ट छात्र को अपने चुनावी पोस्टर में शीर्ष पर जगह देनी पड़ गयी?

देशद्रोह के आरोपी को भगत सिंह बताने की यह गलती तो कांग्रेस ने कर ही दी है, वरना कहाँ भगत सिंह और कहाँ कन्हैया? कोई साम्य नही है। झूठ की खेती कर अफवाहों की फसल उगाने वाले कम्युनिस्ट बुद्धिजीवियों द्वारा फैलाया गया यह भी एक बड़ा झूठ है कि भगत सिंह कम्युनिस्ट थे। जबकि सच्चाई इसके उलट है। सैद्धांतिक  सच्चाई तो ये है कि एक कम्युनिस्ट कभी राष्ट्र की आजादी के लिए लड़ ही नही सकता है, जबकि भगत सिंह इस राष्ट्र की आजादी के राष्ट्र के लिए सर्वस्व न्योछावर करने वाले वीर लड़ाके थे। शशि थरूर सहित कम्युनिस्ट बुद्धिजीवियों को यह पता होना चाहिए कि भगत सिंह अपने पत्रों की शुरुआत 'प्रातः स्मरणीय मातृभूमि' और अंत 'वन्दे मातरम' से करते थे। क्या तब का

या अभी का कोई कम्युनिस्ट 'वन्दे मातरम' बोल भी सकता है? भगत सिंह को कम्युनिस्ट बताने के पीछे एक ऐसा हास्यास्पद तर्क दिया जाता है कि वे जेल में लेनिन की किताब पढ़ रहे थे। अब भला लेनिन की किताब पढने से कोई कम्युनिस्ट हो जाता है क्या! अगर इस लिहाज से भी देखें तो भगत सिंह ने वीर सावरकर की १८५७ स्वतंत्रता संग्राम किताब को भी पढ़ा। इसपर कम्युनिस्ट क्या कहेंगे? आज भगत सिंह जैसे राष्ट्रवादी स्वतंत्रता सेनानी से एक कम्युनिस्ट की तुलना करके कांग्रेस नेता शशि थरूर ने यह साबित किया है कि कांग्रेस में नेतृत्व को लेकर भरोसे का संकट है। उनको अपने नेतृत्व पर और अपने शीर्ष नेता पर भरोसा ही नही है। राजनीति का यह वो काल है जब विपक्ष मोदी विरोध की बेबसी में किसी का भी समर्थन करने को तैयार है। मोदी विरोधियों को बस एक तात्कालिक प्रतीक चाहिए मोदी का विरोध करने के लिए, चाहें उस प्रतीक का कोई वैचारिक जनाधार हो या न हो। हालांकि मोदी विरोध की जद्दोजहद में आतंकी अफजल पर कार्यक्रम करने वाले एक देशद्रोह के आरोपी की तुलना राष्ट्रवादी भगत सिंह से करना, उस महान क्रांतिकारी का अपमान है जो अपने राष्ट्र और मातृभूमि के लिए वन्दे मातरम कहते हुए फांसी पर झूल गया था।

हालांकि कन्हैया का खुद का मामला जब जनता के बीच असरहीन और नकारात्मक जाने लगा तो कांग्रेस की तरह उसने भी उसने रोहित वेमुला के कंधों का सहारा लिया। लेकिन यहाँ भी मामला उल्टा ही पड़ा। हैदराबाद विश्विद्यालय में कुलपति के साथ अभद्रता एवं उनके दफ्तर में तोड़-फोड़ और हिंसा करने वाले कम्युनिस्ट छात्रों का समर्थन करने हैदराबाद पहुंचे कन्हैया को भारी विरोध का सामना करना पड़ा। इसी बीच तेलंगाना के गृहमंत्री नयनी नरसिम्हा रेड्डी ने विधानसभा यह स्पष्ट कर दिया कि जिस रोहित वेमुला को 'दलित' बताया जा रहा है, वो दरअसल दलित नही था। अब कांग्रेस सहित मोदी विरोध में शिद्दत से एकजूट विपक्ष सहित मीडिया को भी यह बताना चाहिए कि उन्होंने रोहित वेमुला के दलित होने की अफवाह क्यों फैलाई? क्या ये लोग एक मृत छात्र के प्रति संवेदना जताने की बजाय उसकी लाश पर सियासत करने को ज्यादा तरजीह दिए। रोहित वेमुला मामले ने तथाकथित मीडिया को भी एक्सपोज किया है। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि कांग्रेस हताशा के दौर में है और उसे कोई भी चेहरा चाहिए जिसके भरोसे वो चल सके। कभी रोहित वेमुला तो कन्हैया के कंधों का सहारा लेकर कांग्रेस चल रही है। यह कांग्रेस की राजनीतिक विफलता है। जेएनयू और हैदराबाद के भरोसे मोदी सरकार के विकास में बाधा पहुंचाने के मंसूबों में एक बार फिर वाम-कांग्रेस गठजोड़ को नाकामी हाथ लगी है। वे फिर मुह की खाए हैं।

जेएनयू प्रकरण पार्ट-४ : वाम-कांग्रेस गठजोड़ की खुली पोल, नाम से इस संकलन को करने का उद्देश्य सिर्फ यही है कि जेएनयू मामले पर वामपंथियों के फैलाए अफवाहों के खिलाफ लोगों को बताया जाय और इस विषय पर विभिन्न मंचों पर प्रकाशित सामग्री को एक जगह संकलित किया जाय। इससे पहले हमने जेएनयू प्रकरण पर तीन और ई-बुकलेट प्रकाशित किये थे जिसे पाठकों की सराहना मिली। इस संकलन में हमने जिन-जिन अखबारों एवं वेबसाइट्स में प्रकाशित लेखों को लिया हैं, उनका आभार व्यक्त करते हैं। जिन लेखकों का लेख लिया है उनका भी आभार व्यक्त करते हैं। डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी फाउंडेशन की तरफ से सभी का पुनः आभार।

**शिवानन्द द्विवेदी**
**रिसर्च फेलो**
**डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी रिसर्च फाउंडेशन**

दैनिक जागरण में प्रकाशित लेख

# आजादी का खतरनाक खेल

**● मिहिर भोले**

जेएनयू से जुड़ी घटनाओं ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, आजादी, देशप्रेम और देशद्रोह जैसे कई मुद्दों पर राष्ट्रव्यापी बहस छेड़ रखी है। मौकापरस्त राजनीति विषय की गंभीरता को नजरंदाज कर मीडिया से लेकर समाज तक एक वैचारिक ध्रुवीकरण को जन्म दे रही है। मामला यूं ही चलता रहा तो इसके भारी दुष्परिणाम होंगे। इसमें शक नहीं कि अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक विविधताओं के बावजूद पिछले कुछ वर्षों में हमने जो तरक्की की है वह दुनिया के कई देशों, विशेषकर हमारे दो तकलीफदेह पड़ोसियों-चीन और पाकिस्तान के लिए ईर्ष्या का कारण बन चुकी है। एक ओर भारत को हजारों जख्म देकर खून से सराबोर करना पाकिस्तान की नीति रही है तो दूसरी ओर चीन भारत को अरुणाचल में घेरने और हिन्दू महासागर में घुसकर भारत की संप्रभुता को लगातार चुनौती दे रहा है। १चीन के सैन्य लीडर झाओ ने १९९० में ही हिन्दू महासागर को भारत के प्रभुत्व वाला क्षेत्र मानने से इन्कार कर दिया था। अपने नक्शे में चीन आज भी अरुणाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग नहीं दिखलाता है। इधर पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (पीओके) में इंफ्रास्ट्रक्चर के निर्माण के बहाने पाकिस्तान ने चीन को बैठा दिया है। चीन वहां गिलगित-बाल्टिस्तान से गुजरने वाले १३०० किलोमीटर लंबे काराकोरम हाईवे के निर्माण से लेकर रेल लाइन बिछाने तक का काम कर रहा है। ३००० से ज्यादा चीनी कामगार पीओके में कार्यरत हैं। पाकिस्तान इसकेद्वारा चीन को जम्मू-कश्मीर की सीमा तक पहुंचाने का रास्ता दे रहा है। युद्ध की स्थिति में भारत के खिलाफ चीन और पाकिस्तान इसका भरपूर इस्तेमाल करेंगे। चीन और पाकिस्तान द्वारा यह सब भारत को जमीन और समुद्र, दोनों ओर से घेरने की मिली-जुली रणनीति है। चीन द्वारा निर्वासित तिब्बती धर्मगुरु दलाई लामा को भारत ने जो सम्मानित अतिथि का दर्जा दिया हुआ है वह कम्युनिस्ट चीन के लिए आंखों की किरकिरी बना हुआ है। १पर क्या जेएनयू के तथाकथित प्रगतिशील छात्रों और शिक्षकों ने कभी पीओके में पाकिस्तान द्वारा किए जा रहे मानवाधिकार हनन, वहां व्याप्त धार्मिक असहिष्णुता, दहशतगर्दी, चीन की विस्तारवादी हरकतों और उसके यहां अभिव्यक्ति की आजादी से जुड़े मुद्दों पर कोई भी प्रतिक्रिया देने की हिम्मत की है? अगर उनकी नजर में जम्मू-कश्मीर को रायशुमारी का हक है तो यह बात तिब्बत और पीओके पर भी क्यों लागू नहीं होती? अब ऐसे में जब देश के अंदर कुछ छात्र भारत के टुकड़े-टुकड़े करने, एक आतंकवादी की सजा को 'जुडिशियल मर्डर' और भारत को औपनिवेशिक ताकत बताने, उसकी धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना पर प्रहार करने, उसकी अनुशासित सेना को दुष्कर्मी साबित करने की बेखौफ हिम्मत करने लगे हों तो इसमें षड्यंत्र की बू तो आने ही लगती है। मीडिया का एक तबका जो इसे प्रगतिशील सोच बताने की भरपूर कोशिश कर रहा है उसे जरा वामपंथी चीन में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और पाकिस्तान में

अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों की भी पड़ताल कर लेनी चाहिए। ऐसी अतिवादी विचारधाराएं हमारे दुश्मनों को लाभ पहुंचाती हैं। पाकिस्तानी टीवी चौनलों और अखबारों में इन दिनों जेएनयू के मुद्दे और उसके समर्थन में खड़े मीडिया और कुछ तथाकथित प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के विचार छाए हुए हैं। इनके द्वारा पाकिस्तान यह बताने की कोशिश कर रहा है कि कश्मीर के बाबत उसकी जो सोच है, भारत के अंदर भी उसका पूरा समर्थन है। साथ ही इनसे वह अपने देश में पनप रही दहशतगर्दी, बलूचिस्तान में उसकेदमन की हरकतों, कराची और सिंध में फैली अराजकता, पंजाबी वर्चस्व की तरफ से विश्व का ध्यान भटकाने में सफल होगा, जिसके बारे में खालिद अहमद और तारेक फतह जैसे नामी-गिरामी पत्रकार लिखते रहे हैं। सिलसिला यूं ही चलता रहा तो कश्मीर के मुद्दे का स्वयं अंतरराष्ट्रीयकरण हो जाएगा जो कि पाकिस्तान चाहता है। दूसरी ओर मणिपुर और उत्तर-पूर्व के राज्यों पर औपनिवेशिक भारत के जबरन कब्जे की अनर्गल थ्योरी गढ़ने वाले शिक्षक चीन के विस्तारवादी कार्यक्रमों को मदद ही तो प्रदान करेंगे। क्या नेहरू यही चाहते थे? यहां नेहरू से जुड़ी १९५५ के अगस्त महीने की एक घटना का जिक्र करना उपयुक्त होगा। एक मामूली-सी बात पर पटना विश्वविद्यालय के छात्रों और राज्य ट्रांसपोर्ट के कर्मचारियों के बीच मारपीट हुई थी। बाद में पुलिस फायरिंग में एक छात्र की गोली लगने से मृत्यु हो गई। आजाद भारत में छात्रों पर पुलिस फायरिंग की यह पहली घटना थी। लोग दुखी थे और नेहरू गहरे अफसोस में, पर उससे भी ज्यादा नेहरू छात्रों द्वारा स्वतंत्रता दिवस का बहिष्कार करने और राष्ट्रध्वज फाड़ने की घटना से व्यथित थे। समाजवादी आंदोलन से जुड़े मेरे पिता अरुण भोले जो स्वयं उस समय एक सक्रिय छात्र नेता थे, वह भी इन हरकतों के सख्त खिलाफ थे, पर जब उनकी बात नहीं चली तो स्टूडेंट एक्शन कमेटी से उन्होंने इस्तीफा दे दिया। इस घटना का जिक्र उन्होंने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'राजनीति मेरी प्रेयसी' में करते हुए लिखा है कि घटना के बाद जब नेहरू पटना में एक आम सभा को संबोधित कर रहे थे तो लोग-बाग उनसे फायरिंग के बारे में कुछ सुनने को बेताब थे। जब बार-बार आवाजें आनी शुरू हुईं कि फायरिंग पर बोलिए तो उनका दबा गुस्सा उबल पड़ा-ये ऐक्शन लेंगे। झंडा फाड़ेंगे। बड़ी कुर्बानी देकर इस झंडे को हमने लहराया है। इस झंडे की शान रखने में चाहे जितनी भी जानें जाएं कम हैं। इसे ऊंचा रखने के लिए हम हर कुर्बानी देने को तैयार हैं! कहीं से आवाज आई कि गोली कांड के दोषी अफसरों को सजा दीजिए तो वह तुनकते हुए बोले-हां, ठीक है। सारे मामले की जांच कराई जाएगी। अगर अफसर दोषी निकले तो उन्हें सजा मिलेगी। इस घोषणा का तालियों की गड़गड़ाहट से जब लोगों ने स्वागत किया तब पंडितजी ने झट से जोड़ दिया, और अगर लड़के दोषी पाए गए तो उन्हें भी सजा मिलेगी। अब बजाइए ताली, किंतु ताली नहीं बजी। थोड़ी देर बाद पंडितजी जब जरा नरम पड़े तो उनकी आवाज में भविष्य की दुश्चिंता भर गई-मेरा क्या, मेरी जिंदगी की तो शाम होने को आई और सूरज ढलने वाला है। फिर देश तो आपको चलाना है। कैसे चलाएंगे आप देश को? कैसे महफूज रखेंगे अपनी आजादी को? बेशक नेहरू की सोच से उनकी ही याद में स्थापित विश्वविद्यालय के छात्रों ने कोई सीख नहीं ली है।

○

दैनिक जागरण में प्रकाशित लेख

# देश की कीमत पर राजनीति

**• जगमोहन सिंह राजपूत**

राजनीतिक दलों का यह नैसर्गिक अधिकार माना जाता है कि वे सत्ता में आने का सतत प्रयास करते रहें, आ जाने पर वहां डटे रहें और यदि जनता उन्हें सत्ताच्युत कर दे तो साम, दाम, दंड, भेद के सूत्रों को अपनाते, तोड़ते-मरोड़ते वे फिर कुर्सी हथियाने का प्रयास करें। इस प्रकार से आज की राजनीति में यह महाभारत चलता ही रहता है। इसमें सबसे अधिक प्रहार सत्य तथा नैतिकता पर ही होता है और हर ऐसे प्रयास में व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लगातार उभरते रहते हैं। परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति में देश की प्रगति तथा सामान्य जन के हित पिछड़ते जाते हैं। जिस प्रकार मई २०१४ में चुनी गई सरकार के हर जनहितकारी प्रयास में मुख्य विपक्षी दल अड़ंगे लगाता रहा है वह भारत की राजनीति में गहराती जा रही व्यक्तिगत और पारिवारिक स्वार्थपरकता को पूर्णरूपेण से उजागर करता है। कांग्रेस के समक्ष दो चित्र उभरते हैं। उसे राहुल गांधी को प्रधानमंत्री बनाने का निर्देश है, उसका पालन करना है। दूसरा, नरेंद्र मोदी जिस लगन और निष्ठा से समाज के सबसे वंचित वर्ग की ओर ध्यान दे रहे हैं, उसका संदेश उनकी लोकप्रियता को स्थायी रूप से बढ़ा रहा है। इसका सीधा अर्थ है कि कम से कम २०२४ के पहले कांग्रेस के लिए यानी राहुल गांधी का कोई भविष्य बचता ही नहीं है। यही स्थिति विपक्ष में बैठे उन सभी महत्वाकांक्षी नेताओं की हो गई है जो प्रधानमंत्री पद सुशोभित करने के लिए व्याकुल थे और तदनुसार जोड़-तोड़ की गणित में प्रवीणता हासिल कर रहे थे। आज विपक्ष तिनके का सहारा ढूंढ़ रहा है। जिस फुर्ती से राहुल गांधी दो बार रोहित वेमुला के दर्दनाक प्रकरण में राजनीति की रोटी सेंकने हैदराबाद पहुंचे, जैसे वह तथा उनके स्वाभाविक सहयोगी जेएनयू में बिना सोचे समझे पहुंच गए उससे सारे देश के सामान्य जन में संदेश उनके विपरीत ही गया। जेएनयू में राष्ट्रविरोधी नारे खुलेआम लगे, यह तो सभी मानते हैं। कांग्रेस राष्ट्र तथा तथ्यों से कितनी दूर हो गई है, इसका उदाहरण दिग्विजय सिंह जैसे नेता तो प्रतिदिन देते ही रहते है, उसका सबसे बड़ा प्रमाण शशि थरूर ने प्रस्तुत कर दिया। उन्हें भगत सिंह तथा कन्हैया कुमार में कोई अंतर दिखाई नहीं दिया। यह मान पाना मुश्किल है कि जेएनयू में भारत की बर्बादी तक के नारे केवल बाहरी तत्वों ने ही लगाए थे और वह भी अपना चेहरा ढक कर। विपक्ष ने यह मान लिया कि जेएनयू के युवा वास्तव में भुखमरी, शोषण तथा अन्याय से आजादी मांग रहे थे, वे वंचितों तथा दलितों के लिए संघर्ष कर रहे थे और वे अंबेडकर के सपनों को पूरा करने की कसमें खा रहे थे। आज जब गुलाम नबी आजाद या ओवैसी ‘जेएनयू-जनित-आजादी’ का अपने ढंग से विवेचन और उपयोग करते हैं तब वे भारत की आजादी पर प्रहार कर रहे होते हैं, उसके सामाजिक ताने-बाने के धागों को कमजोर कर रहे होते हैं और पारस्परिक सद्भाव की जड़ें खोद रहे होते हैं। ऐसे लोग जब बाबा साहब का नाम लेते है तब उन पर तरस ही खाया जा सकता है। जो

स्थिति बनी है वह अपेक्षित ही है। इसे डॉ. अंबेडकर का संविधान सभा में दिया गया समापन भाषण सहज मगर अत्यंत गहराई से स्पष्ट कर देता है। यह भाषण ऐतिहासिक है और भारत की आज की राजनीति को समझने के लिए इसके निहितार्थ को जानना आवश्यक है। उन्होंने कहा था, 'इस संविधान की निंदा अधिकतर दो क्षेत्रों से की जाती है। साम्यवादी पक्ष द्वारा और समाजवादी पक्ष द्वारा। वे क्यों इस संविधान की निंदा करते हैं? क्या इसलिए कि यह संविधान वास्तव में खराब है? मैं यह कहने का साहस करता हूं कि नहीं है। साम्यवादी श्रमिकों की तानाशाही के सिद्धांत पर आधारित संविधान चाहते हैं। वे संविधान की इस कारण निंदा करते हैं कि यह संसदीय लोकतंत्र पर आधारित है। समाजवादी दो बातें चाहते हैं। पहली बात यह कि यदि उनके हाथ में शक्ति आ जाएगी तो बिना प्रतिकर दिए सारी निजी संपत्ति का राष्ट्रीयकरण करने या समाजीकरण करने की स्वतंत्रता संविधान द्वारा उन्हें मिलनी चाहिए। दूसरी बात समाजवादी यह चाहते हैं कि संविधान में वर्णित मूलाधिकार बिना किसी परिसीमा के होने चाहिए जिससे कि यदि उनके पक्ष के हाथ में शक्ति आ जाए तो उन्हें आलोचना करने के लिए ही नहीं वरन राज्य को उलटने तक के लिए पूरी-पूरी आजादी मिल जाए।' आज आजादी के नारे लगाने वालों के साथ खड़े वामपंथी तथा समाजवादी केवल चुनावी गणित तक सीमित होकर रह गए है। वे न तो संविधान का सम्मान करते हैं न ही इन्हें दलितों तथा वंचितों के हित की कोई चिंता है। यह लोग जब डॉ. अंबेडकर का नाम लेते हैं तब यह याद करना आवश्यक है कि बाबा साहब स्वयं इन्हें कितनी गहराई से समझते थे। जब यह वर्ग अफजल या कसाब का महिमामंडन करता है तब उनका अंतर्निहित उद्देश्य तो संविधान को तहस-नहस करने का ही होता है। संविधान निर्माण के समय जो कुछ इन लोगों ने किया था उसे बाबा साहब ने झेला था। वह तो उनका अप्रतिम व्यक्तित्व था जिसके प्रभाव में इनकी दाल नहीं गली। अंबेडकर के मर्मस्पर्शी शब्द बहुत कुछ कहते हैं, 'भारत एक स्वतंत्र देश होगा। उसकी स्वाधीनता का क्या परिणाम होगा? क्या वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेगा या उसको फिर खो देगा?' इसी भाषण में आगे डॉ. अंबेडकर अपनी इस आशंका के पैदा होने के ऐतिहासिक कारणों का विश्लेषण करते हैं। यह विश्लेषण आज के अनेक नेताओं का मार्गदर्शन कर सकता है बशर्ते वे ईमानदारी से इसमें निहित मंतव्य को समझने और आत्मसात करने का प्रयत्न करें। डॉ. अंबेडकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि लोकतंत्र को यथार्थ रूप देने के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हम संविधानिक रीतियों को दृढ़तापूर्वक अपनाएं। भारत में इस समय यही सवरेत्तम तथा सर्वमान्य मार्ग है।

○

# किताब जलाने वाले छात्र

**● राजीव सचान**

दैनिक जागरण में प्रकाशित लेख

जिस जेएनयू में ६ फरवरी को अतिवादी तत्वों के एक समूह ने देश विरोधी नारे लगाकर देश को उद्वेलित किया उसी में विभिन्न छात्र संगठनों के चंद छात्रों ने ८ मार्च को मनुस्मृति के कुछ पन्नों की प्रतियां भी जलाईं। इस आयोजन में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के विद्रोही छात्र नेताओं ने भी शिरकत की। आइसा, डीएसयू और बिरसा अंबेडकर फुले छात्र संगठन समेत कई अन्य संगठनों की अगुआई में यह आयोजन महिला दिवस के मौके पर यह कहते हुए किया गया कि इस पुस्तक में महिलाओं के प्रति अपमानजनक बातें लिखी हुई हैं। यह कार्यक्रम जेएनयू विश्वविद्यालय प्रशासन की अनुमति न मिलने के बावजूद हुआ। विश्वविद्यालय प्रशासन का तर्क था कि माहौल ऐसा नहीं है कि इस तरह के कार्यक्रम के लिए अनुमति दी जाए। अपने आदेश की अनदेखी पर उसने मनुस्मृति जलाने वाले पांच छात्रों को नोटिस भी दी। यह पता नहीं कि इन छात्रों ने अपने जवाब में क्या लिखा, लेकिन उनका कहना था कि आखिर मनुस्मृति जलाने में आपत्ति क्यों? इस कार्यक्रम में शामिल कुछ छात्रों का कहना था कि मनुस्मृति पढ़ना वाकई अरुचि पैदा करता है। इन छात्रों से किसी ने नहीं पूछा कि आखिर आज किसी को मनुस्मृति पढ़ने की जरूरत ही क्या है? चूंकि उन दिनों जेएनयू की हर गतिविधि को चर्चा मिल रही थी इसलिए मनुस्मृति दहन कार्यक्रम के भी चर्चित होने का अनुमान था, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। शायद इस कारण कि एक तो ज्यादा भीड़ नहीं जुटी और दूसरे इस कार्यक्रम का विरोध करने के लिए कोई आगे नहीं आया। मीडिया ने भी इसे ज्यादा महत्व नहीं दिया। संभवतरू इसलिए कि जेएनयू में मनुस्मृति जलाने का काम नियमित तौर पर होता रहा है और उसके विरोध में कोई आवाज मुश्किल से ही सुनाई देती रही है। इस बार भी बनारस के कुछ पुजारियों के अलावा अन्य किसी ने मनुस्मृति दहन पर नाराजगी नहीं जताई। दिल्ली में अवश्य किसी ने यह कहते हुए अदालत का दरवाजा खटखटाया कि उसे मनुस्मृति दहन से दुख पहुंचा है। इन छिटपुट आपत्तियों के अलावा शेष हिन्दू समाज ने इस आयोजन की कोई परवाह नहीं की। कुछ ने यह कटाक्ष अवश्य किया कि अगर मनुस्मृति जलाने का काम बड़े पैमाने पर होने लगे तो फिर इस पुस्तक के प्रकाशन के रूप में एक नया व्यवसाय शुरू हो सकता है। कुछ ने मनुस्मृति पढ़ने की इच्छा व्यक्त की ताकि यह जाना जा सके कि आखिर उसमें ऐसा क्या लिखा है कि लोग उसे जलाने का उपक्रम करते रहते हैं? १जेएनयू में मनुस्मृति जलाने वाले अब अंबेडकर के जन्म दिन १४ अप्रैल को उसे जलाने का आग्रह कर रहे हैं। शायद इसलिए कि १९२७ में पहली बार अंबेडकर ने मनुस्मृति को हिन्दू समाज की तमाम बुराइयों की जड़ बताते हुए उसे जलाया था। हो सकता है कि १४ अप्रैल को एक बार फिर मनुस्मृति जलाने का काम हो, लेकिन अगर ऐसा होता है तो ज्यादा से ज्यादा यही हो सकता है कि कुछ और लोग इस पुस्तक को पढ़ने के लिए उत्सुक हो जाएं। मनुस्मृति

जलाने का विरोध करने वालों का तर्क है कि उसके कुछ श्लोकों की गलत व्याख्या के कारण उसे महिला और दलित विरोधी करार दिया गया है। पता नहीं उनका तर्क कितना सही है, लेकिन आम धारणा यही है कि मनुस्मृति के कुछ श्लोक दलितों और महिलाओं को दोयम दर्जे का साबित करते हैं। शायद यही कारण है कि वह प्रचलित ग्रंथों का हिस्सा नहीं रह गई है। औसत हिन्दुओं ने मनुस्मृति को पढ़ना तो दूर रहा, देखा भी नहीं होगा। मनुस्मृति न तो वैदिक साहित्य का हिस्सा है और न ही उसके बारे में ऐसी कोई मान्यता है कि हिन्दू समाज के रीति-रिवाज इसी पुस्तक की देन हैं। कोई ऐसा कहने वाला भी नहीं मिलता कि हिन्दुओं को मनुस्मृति में जो कुछ लिखा है उसका पालन करना चाहिए। कोई ऐसा कहे भी तो लोग उसे मानने वाले नहीं हैं। ऐसी किसी भी बात का अनुसरण नहीं होना चाहिए जो मानवीय गरिमा के खिलाफ हो। हिन्दू समाज में कुछ खामियां हो सकती हैं और हैं भी, लेकिन वह किसी एक ग्रंथ या देव-देवता का अनुगामी नहीं है। जो गीता उसके लिए सबसे बड़ा ग्रंथ है उसमें भी कृष्ण अर्जुन से यही कहते हैं कि मैंने तुम्हें गूढ़ ज्ञान बता दिया। उस पर मनन करो और फिर जैसी इच्छा हो वैसा करो। स्पष्ट है कि इन स्थितियों में यह प्रचारित करना निपट मूर्खता है कि हिन्दू समाज मनुस्मृति से संचालित है। यदि किसी को यह लगता है कि मनुस्मृति का दहन करने से कुछ हासिल हो सकता है तो वह खुशी-खुशी ऐसा करते रह सकता है, लेकिन ऐसा करने वालों को उन सभी ग्रंथों से परिचित होना चाहिए जिनमें महिलाओं को दोयम दर्जे का नागरिक साबित किया गया है। इन दिनों सुप्रीम कोर्ट में मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों को लेकर सुनवाई हो रही है। तीन तलाक, हलाला निकाह आदि के तौर-तरीकों की समीक्षा करने के सुप्रीम कोर्ट के रुख पर ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और कुछ अन्य मुस्लिम संगठनों को आपत्ति है। उनका तर्क है कि शरीयत-हदीस वगैरह में कोई बदलाव नहीं हो सकता। अगर वास्तव में ऐसा ही है तो फिर इसका मतलब है कि मुस्लिम महिलाएं इसी तरह जुबानी तलाक का शिकार होती रहेंगी। खुद को महिला अधिकारों के प्रति प्रतिबद्ध बताने वाले जेएनयू के छात्र नेता यदि ढोंग नहीं कर रहे तो उन्हें अब तक मुस्लिम महिलाओं के पक्ष में खड़ा हो जाना चाहिए और कम से कम ऐसा कुछ कहना भी चाहिए कि शरीयत-हदीस की ऐसी व्याख्या की जाए जिससे मुस्लिम महिलाओं को एक झटके में तलाक न दिया जा सके और चार विवाह का सिलसिला बंद हो सके। उन्हें यह भी कहना चाहिए था कि कोई भी ग्रंथ हो यदि उसमें ऐसा कुछ है जिसकी व्याख्या किसी को दोयम दर्जे का साबित करने या फिर प्रताडष्ति करने वाले नजरिये से हो सकती है तो फिर उसका विरोध होना चाहिए। जेएनयू छात्रसंघ से ऐसी अपेक्षा खास तौर पर है, क्योंकि उसकी उपाध्यक्ष वह शेहला राशिद हैं जिन्होंने मनुस्मृति दहन को उचित ठहराया था।

❍

# कैसी आजादी चाहिए कन्हैया को ?

**• सीता**

नई दुनिया में प्रकाशित लेख

अरसे बाद लेफ्ट को एक नया आइकॉन मिला है वह जेएनयू छात्र संघ का अध्यक्ष है और उसका नाम है कन्हैया कुमार माकपा महासचिव सीताराम येचुरी पहले ही उत्साह में आकर घोषणा कर चुके हैं कि कन्हैया पश्चिम बंगाल में होने वाले चुनावों में उनका स्टार प्रचारक होगा कन्हैया का नाम सुर्खियों में आया था आजादी को लेकर लगाए गए चंद नारों से अब उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि वास्तव में उन्हें देश से नहीं, बल्कि देश में आजादी चाहिए और यह भी कि उन्हें पूंजीवाद, ब्राह्मणवाद, मनुवाद, भुखमरी, बेरोजगारी वगैरह-वगैरह से आजादी चाहिए खयाल तो नेक है आखिर इन चीजों से आजादी कौन नहीं चाहेगा? लेकिन सवाल है कि यह आजादी मिलेगी कैसे? कन्हैया सीपीआई की स्टूडेंट यूनियन के नेता हैं, लिहाजा जाहिर है वे लेफ्ट का राग ही गाएंगे यही कि प्राइवेट सेक्टर खराब है, पूंजीपति तो और बदतर हैं और राज्यसत्ता को बाजार पर कठोर नियंत्रण रखना चाहिए चूंकि सीपीआई और बंगाल का गहरा नाता रहा है, लिहाजा पूछा जाना चाहिए कि बंगाल के परिप्रेक्ष्य में पूंजीवाद से आजादी का नारा बुलंद करने की क्या तुक है? पश्चिम बंगाल को तो बहुत पहले पूंजीवाद से आजादी मिल गई थी वामदलों के तीन दशक के शासनकाल में अनेकानेक उद्योग-धंधे वहां से पलायन कर गए लेकिन क्या इसके बाद भी वहां के लोगों को भुखमरी और बेरोजगारी से आजादी मिल गई? इसकी तुलना उन राज्यों से करें, जिन्होंने पूंजीवाद से आजादी का नारा बुलंद करने के बजाय उल्टे पूंजीवादियों का अपने यहां स्वागत किया, हरियाणा, महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, गुजरात इत्यादि इन तमाम राज्यों के पिछले तीस-चालीस सालों के गरीबी के आंकड़े देखिए आप पाएंगे कि पश्चिम बंगाल इनमें सबसे गरीब है १९७३-७४ में बंगाल की ६३.४ प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे थी, जबकि पूंजीवाद का स्वागत करने वाले अन्य राज्यों में यह आंकड़ा २८ से ५५ प्रतिशत तक था वाम सरकारों के इतने लंबे कार्यकाल के बावजूद आज भी बंगाल इन तमाम राज्यों से पिछड़ा हुआ है अन्य राज्यों में गरीबों की संख्या में भी पश्चिम बंगाल की तुलना में अधिक तेजी से गिरावट आई है। अब बेरोजगारी से आजादी की बात करें वर्ष २०११-१२ में राष्ट्रीय सैंपल सर्वे ऑर्गेनाइजेशन द्वारा कराए गए एक बेरोजगारी सर्वेक्षण में पाया गया था कि १५ से ५९ वर्ष आयु वर्ग के लोगों के बीच बेरोजगारी का प्रतिशत पश्चिम बंगाल में ३.३ प्रतिशत है, जबकि उद्योग-केंद्रित अन्य राज्यों में यह ०.५ से २.४ प्रतिशत तक है केंद्रीय श्रम एवं रोजगार मंत्रालय के लेबर ब्यूरो द्वारा जारी की गई यूथ एंप्लायमेंट सिनैरियो २०१२-१३ की रिपोर्ट से भी यही तस्वीर उभरकर सामने आती है। लेकिन कन्हैया की जो विश्व-दृष्टि है, उसमें उनको लगता है कि पूंजीवाद और मुक्त-बाजार अर्थव्यवस्था का सरोकार केवल बड़े बिजनेस घरानों से ही है ऐसा

नहीं है छोटे उद्यमों और उपभोक्ताओं से भी इसका इतना ही सरोकार है रेहड़ी-पटरी वालों से भी इसका गहरा ताल्लुक है वास्तव में देश में समाजवादी शासन के ४० सालों तक कायम रहे लाइसेंस-परमिट राज के दौरान सबसे ज्यादा कष्ट छोटे उद्यमों ने ही झेला था जाने कितने उद्यमी बाबुओं से जूझते-जूझते परिदृश्य से ओझल हो गए कन्हैया का जोर पूंजीवाद से आजादी पर तो था, लेकिन छोटे उद्यमियों और कारोबारियों की आजादी के बारे में उन्होंने कोई चिंता नहीं जताई इन्हें भी आजादी चाहिए, लाइसेंस-परमिट से, इंस्पेक्टर राज से, नेता-बाबू गठजोड़ से क्या कन्हैया को पता नहीं कि वे जिस वामपंथी-समाजवाद के अनुयायी है, नौकरशाही का जाल और लाइसेंस-परमिट का चक्रव्यूह रचने का श्रेय उसी को सबसे ज्यादा है। वामपंथियों के साथ दिक्कत यह है कि उन्हें लगता है गरीबों का भला करने का ठेका अकेले उनके पास है लेकिन यह भ्रम बहुत पहले ही टूट चुका है और वास्तव में देशवासियों ने उनके खिलाफ लगातार जनादेश दिया है उनकी तुलना में तो आजादी के लिए संघर्ष करने वाले लोग वे हैं, जो यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि संपत्ति का प्रसार हो, वह आबादी के एक छोटे-से हिस्से तक ही सीमित होकर न रह जाए। मिसाल के तौर पर मधु किश्वर ने स्ट्रीट वेंडर्स के लिए एक राष्ट्रीय नीति बनाए जाने को लेकर खासा संघर्ष किया है लेकिन वे तो वामपंथी नहीं हैं उल्टे वे मुक्त बाजार प्रणाली की समर्थक हैं वे यह आवाज उठाने वाले पहले लोगों में से थीं कि उदारीकरण के लाभ अब हॉकरों और स्ट्रीट वेंडर्स जैसे निचले तबके के लोगों तक भी पहुंचने चाहिए दिल्ली स्थित सेंटर फॉर सिविल सोसायटी भी गरीबों का पक्षधर होने के साथ ही मुक्त बाजार प्रणाली का हिमायती है एक अर्थ में आजादी की लड़ाई यह संस्थान भी लड़ रहा है वह संघर्षरत है कि देश में किफायती शुल्क लेने वाले निजी स्कूलों की संख्या में इजाफा हो, ताकि निजी स्कूलों का खर्चा वहन न कर सकने वाले वे माता-पिता भी अपने बच्चों को वहां पढ़ा सकें, जो उन्हें सरकारी स्कूलों में नहीं भेजना चाहते एक समाजवादी माई-बाप सरकार इस समस्या का समाधान इस तरह से करती है कि वह शिक्षा का अधिकार कानून बना देती है इससे यह होता है कि निजी स्कूलों में पढ़ाई के रहे-सहे विकल्प भी खत्म हो जाते हैं और निम्न आय वर्ग के बच्चे पूरी तरह से सरकारी स्कूलों के ढर्रे पर आश्रित हो जाते हैं समाजवादी सरकार इन सरकारी स्कूलों की स्थिति सुधारने की बातें तो करती हैं लेकिन ऐसा कभी हो नहीं पाता देखा जाए, तो इस तरह के कानून न केवल किफायती निजी स्कूलों को संचालित होने की आजादी से महरूम कर देते हैं, बल्कि गरीब परिवारों से शिक्षा के विकल्प की आजादी भी छीन लेते हैं लेकिन कन्हैया कुमार को इस तरह की आजादियों की परवाह कहां? ।कन्हैया को जातिवाद से भी आजादी चाहिए, लेकिन बड़े मजे की बात है कि जातिगत आरक्षण से आजादी उन्हें नहीं चाहिए? भला ऐसा कैसे संभव है? हकीकत तो यही है कि आरक्षण नीति के कारण भारत में जाति की जड़ें और मजबूत हुई हैं जाति-आधारित भेदभाव खत्म होना तो दूर, जातिगत विसंगतियों के नए स्वरूप उभरकर सामने आ गए हैं जाति आरक्षण को कायम रखते हुए जातिवाद से मुक्ति की बात करना ऐसे में एक खोखले नारे से बढ़कर कुछ नहीं है ।वास्तव में आजादी की मांग करना बहुत सरल है लेकिन आजादी क्या है, यह तय करना और उसे हासिल करना बहुत ही दुष्कर है आजादी की मांग करते हुए जोरदार नारेबाजी करना तुरंत लोकप्रिय जरूर बना सकता है, लेकिन अगर कन्हैया कुमार लंबी रेस का घोड़ा बनना चाहते हैं तो इस संबंध में थोड़ा चिंतन-मनन कर लेना चाहिए वास्तव में देश को पूर्ण आर्थिक आजादी की दरकार है, लेकिन इस विचारधारा का समर्थन तो वे कभी करने से रहे! ❍

# पैर बांधकर नहीं दौड़ सकता वामपंथ

● **सूर्यप्रकाश**

कोई व्यक्ति अपने पैरों को बांधकर कितना दौड़ सकता है? जाहिर है, दो चार कदम गिरते-पड़ते चलेगा और फिर ढेर हो जाएगा। ऐसा ही हाल आज के दौर के वामपंथ का है, जो अपनी दशा और दिशा दोनों ही नहीं तय कर पा रहा। आजादी के बाद से ही भारत के अकादमिक जगत में जड़ें जमाकर बैठने वाले वामपंथ ने कांग्रेस के श्कंधे पर बंदूक रखकरश लंबे समय तक देश की राजनीति में अपना एजेंडा थोपने का काम किया है। लेकिन १६ मई २०१४ के बाद से वामपंथी संगठनों को सरकारी खर्च पर अकादमिक और राजनीतिक जगत में अपना एजेंडा लागू करने के अवसर कम मिल रहे हैं। वजह यह कि वह खुद त्रिपुरा छोड़ कहीं सत्ता में नहीं हैं और कांग्रेस का सहारा क्या मिले, उसका तो एक तरह से सूपड़ा ही साफ हो गया।

निश्चित तौर पर यह वाम राजनीति के लिए मुश्किल समय है, हर संगठन और विचारधारा के लिए अच्छा या बुरा वक्त आता है। उससे बाहर निकलने की कोशिशें की जानी चाहिए। लेकिन वामपंथी दल शायद सबक लेते नहीं दिखते। राजनीतिक हार और शैक्षणिक संस्थानों में गैरजरूरी दखल खत्म होने के चलते बौखलाहट में वह तय नहीं कर पा रहे हैं कि किन मुद्दों को उठाकर आगे बढ़ा जाए। जेएनयू में कुछ वामपंथी विचारधारा के छात्रों की ओर से भारत विरोधी नारे लगाने से लेकर रोहित वेमुला की मौत पर राजनीतिक रोटियां सेंकने, याकूब की फांसी पर अनर्गल विलाप करने, मालदा पर चुप्पी साधने, बीफ पार्टियां करने, कश्मीर की आजादी के नारों का समर्थन करने तक ऐसी तमाम हरकतें इस बात की बानगी हैं कि वामपंथ अब आत्मघाती राह पर है। वामपंथी संगठनों की ओर से इस तरह के अनर्गल मुद्दे उठाना यह साबित करता है कि उनके पास रचनात्मक मुद्दों की कमी हो गई है, या वह कम मेहनत पर ज्यादा फसल काटना चाहते हैं।

वामपंथी संगठनों का राजनीतिक आधार लगातार सिकुड़ता जा रहा है। लेकिन अपने सांगठनिक आधार को बढ़ाने में असफल वामपंथी विश्वविद्यालय परिसरों में विकृत एजेंडा लागू कर अपने लिए समर्थन जुटाने की कोशिशों में हैं। जेएनयू की प्रोफेसर निवेदिता मेनन और पत्रकारिता संस्थान आईआईएमसी के अमित सेनगुप्ता अपने छात्रों को यही पढ़ाते पाए जाते हैं कि कश्मीर को भारत से आजाद किया जाना चाहिए और श्भारत तेरे टुकड़े होंगेश के नारे लगाना अभिव्यक्ति की आजादी है। जेएनयू विवाद की आड़ में सुर्खियां बटोरने की चाह में

इस्तीफा देने वाले अमित सेनगुप्ता की ही बात करें तो उन्होंने संस्थान की कोर्स डायरेक्टर की ओर से तैयार किए गए शेड्यूल को छात्रों के सामने ही फाड़ दिया। ध्यान देने की बात है वह खुद भी वामपंथी संगठन से जुड़े रहे हैं और १९९८ में जेएनयू स्टूडेंट यूनियन के अध्यक्ष रहे हैं। कैंपस में राजनीति को लेकर जब उन पर कार्रवाई हुई तो उन्हें ओडिशा के ढेंकानाल भेजने का फैसला लिया गया। लेकिन, क्रांति का नारा देने वाले अमित सेनगुप्ता ने आदिवासी इलाके में जाकर ज्ञान का प्रकाश फैलाने की बजाय इस्तीफा दे दिया।

यही स्थिति हैदराबाद यूनिवर्सिटी की रही, जहां शिक्षकों ने रोहित वेमुला के मन में इस कदर जहर भर दिया कि वह याकूब मेमन जैसे आतंकियों की बरसी मनाने लगा। यही नहीं आंबेडकर के जन्मदिवस के मौके पर भी अफजल गुरुओं और याकूबों को श्रद्धांजलि दिए जाने के कार्यक्रम होने लगे। आखिर में इन कुंठाओं के बीच ही रोहित वेमुला ने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। आखिर कौन था उसके जिम्मेदार? इन सवालों का जवाब भी रोहित वेमुला के ही सुसाइड नोट से मिलता है। वेमुला के एक करीबी मित्र ने एक अंग्रेजी अखबार में लिखे लेख के जरिए कहा भी कि वह वामपंथी राजनीति के ढोंग से तंग आ चुका था। रोहित वेमुला का कहना था कि वह जिन वजहों से वामपंथी संगठन से जुड़ा था, वह भ्रम साबित हुआ। उसने वामपंथी संगठनों में पसरे जातिवाद की ओर भी इशारा किया।

ऐसा ही जेएनयू में भी हुआ, जहां कई प्रोफेसरों की साजिश के तहत राष्ट्रविरोधी कार्यक्रमों को अंजाम दिया गया। कहा तो यह भी जा रहा है कि जब देशद्रोह की नारेबाजी करने वाला उमर और उसके साथी फरार थे तो वह कहीं बाहर नहीं, बल्कि जेएनयू कैंपस में ही किसी प्रोफेसर के ही घर में छिपे थे। लंबे समय तक भारत के इतिहास को विकृत कर अपनी कुत्सित एजेंडा थोपने वाले वामपंथी अब इन उपक्रमों से कैंपसों में भी जहर घोलने की कोशिशों में लगे हैं। हालांकि इन नकारात्मक उपक्रमों से वामपंथ के आगे बढ़ने की उम्मीद कम ही है।

## यह लड़ाई भी हार गया वामपंथ

मेरे दफ्तर में कई वामपंथी मित्र हैं, जिन्होंने जेएनयू में ९ फरवरी को देशद्रोही नारे लगाए जाने की घटना को लेकर कहा था कि क्या आपकी देशभक्ति इतनी कमजोर है कि कुछ नारों से उसे खतरा लगे। मैंने कहा, नहीं। मेरी देशभक्ति इतनी मजबूत है कि उन नारों का स्वर ही समाप्त करने का प्रयास करे। एक ने कहा कि जो कुछ हुआ वह अभिव्यक्ति की आजादी है। लेकिन, देशद्रोही नारे लगाने के आरोप में पुलिस हिरासत से कन्हैया के लौटने के बाद जो कुछ हुआ, वह काबिलेगौर है। जेएनयू परिसर में कन्हैया ने श्भारत माता की जयश के नारों के बीच भाषण दिया और तिरंगा लहराया गया। कन्हैया ने सैनिकों की शहादत पर चिंता जताई। संसद से लेकर सड़क तक यह पहला मौका था, जब किसी वाम संगठन ने सैनिक की बात की। (२००९ जेएनयू में ही वामपंथी छात्रों ने दो जवानों को यह पता लगने के बाद बुरी तरह पीटा था कि वह सैनिक हैं। इस मसले को बीजेपी सांसद भुवनचंद्र खंडूड़ी ने संसद में भी उठाया था।)

जेल वापसी के बाद दिया गया कन्हैया का भाषण इस बात का संकेत है कि भारत के

वामपंथी दलों ने एक सबक सीखा है कि वह भारत के खिलाफ जाकर अपना अस्तित्व नहीं बचा सकते। समझने की बात यह है कि कन्हैया ने जेल से लौटने के बाद जो बोला वह उनका प्रयासपूर्वक संशोधित स्वर था और ६ फरवरी को जो नारे लगे, वह वामपंथ का असली स्वर। (कविता कृष्णन और अमरजीत कौर जैसी वामपंथी नेताओं ने टीवी पर इन नारों को अभिव्यक्ति की आड़ में सही ठहराने की कोशिश की थी।)

## वामपंथियों को नहीं न्यायिक व्यवस्था पर भरोसा

यह सही है कि भारत को वह ३राष्ट्रों का समूह३ करार देते रहे हैं, १९६२ की जंग के वक्त उन्होंने चीन का ही समर्थन किया था। देश के सैनिकों को वह ३सरकारी लठैत३ कहते हैं, अदालत (याकूब मेमन और अफजल गुरु के मामले में) यदि उनकी सोच के अनुकूल फैसला न दे तो उस पर भी सवाल उठाने लगते हैं। अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर वह यह सब करते रहे हैं। यह देश की सहिष्णुता ही है कि उसने यह सब सहा। लेकिन इस बार की हार के बाद वाम विचारधारा के मित्र इस कदर बौखला गए कि मुजाहिदीनों की भाषा बोलने लगे। जेएनयू में वामपंथ का यह ३मुजाहिद३ स्वर सुनाई दिया है। ३भारत तेरे टुकड़े होंगे, इंशाअल्लाह-इंशाअल्लाह३ और ३भारत की बर्बादी तक जंग रहेगी-रहेगी३, जैसे जहरीले बोल किसी आतंकी संगठन के ही हो सकते हैं। लेकिन पराजय बौखलाहट में वामंपथी संगठन इन नारों के साथ जाकर खड़े हो गए।

## वामपंथ का ३मुजाहिद स्वर३

देश के किसी भी राजनीतिक संगठन को भारत पर राज करने का सपना देखने का हक है। संवैधानिक तरीकों से वह इसके लिए प्रयास करते ही हैं। लेकिन, देश पर राज तो तभी कर सकेंगे, जब देश आबाद रहेगा। भारत की बर्बादी का सपना अलकायदा जैसे आतंकी संगठनों का ही हो सकता है, जो भारत के मौजूदा स्वरूप को बर्बाद कर ३दारुल इस्लाम३ की स्थापना करना चाहते हैं। जेएनयू के प्रांगण में वामपंथी मित्रों ने मुट्ठी बांधकर हवा में जो नारे उछाले वह इन्ही आतंकी संगठनों की भाषा से मेल खाते हैं। (कुछ लोगों का कहना है कि घटना के ७ में से दो वीडियो डॉक्टर्ड हैं, यानी पांच सही हैं। साफ है कि नारेबाजी की बात भी पूरी तरह सही है।)

## कभी उन मौतों का भी मातम मनाइए

३अफजल हम शर्मिंदा है, तेरे कातिल जिंदा हैं३ जैसा उन्मादी नारा बुलंद करने वाले वामपंथी संगठनों ने सुप्रीम कोर्ट के जजों और राष्ट्रपति को कातिल ठहरा दिया। लेकिन यह अहम सवाल है कि क्या कश्मीरी पंडितों का रक्त बहाने वालों के खिलाफ उन्होंने नारा बुलंद किया। जिस चीन में बारिश होने पर वह छतरी निकाल लेते हैं, उसने तिब्बत पर जो अत्याचार किए, क्या कभी उसके विरोध में नारे बुलंद हुए, नहीं। गाजा पट्टी पर एक फलीस्तीनी की मौत पर कोहराम मचाने वाले और इजरायल के दूतावास के बाहर प्रदर्शन करने वाले वामपंथी संगठनों ने कभी लाखों की संख्या में यजीदियों को खदेड़े जाने और महिलाओं से महीनों तक सामूहिक गैंगरेप पर आंसू बहाए, नहीं। आखिर क्यों? समानता के लिए लड़ने का दावा करने

वाले वामपंथी संगठनों और विचारकों को इन सवालों का जवाब तलाशना चाहिए।

## बदलाव खुद से शुरू करना होगा

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'। यह बात वामपंथ पर एकदम सटीक लगती है। यह सही है कि संघ परिवार से जुड़ी बीजेपी और कांग्रेस समेत तमाम राजनीतिक दल दलितों एवं समाज के पिछड़े तबकों को उनका वाजिब हक देने में असफल रहे हैं। लेकिन वामपंथी दलों और विचारकों को अपने भीतर भी झांकना चाहिए। बीते ५१ सालों में सीपीएम के पोलित ब्यूरो में यदि एक भी दलित को जगह नहीं मिल सकी है तो यह किसकी कमी है? क्या वहां भी आरएसएस के चलते दलितों को नेतृत्व में हिस्सा नहीं मिल सका? रोहित वेमुला के मामले में रोना मचाने वाले मित्रों को इन सवालों का भी जवाब देना होगा कि नक्सलियों का नेतृत्व भी ब्राह्मणों के हाथ में ही क्यों है और मरने को दलित ही क्यों हैं? साफ है कि वामपंथ को खुद से बदलाव की शुरुआत करने की जरूरत है।

## सीखना होगा विपक्ष में रहना

पिछले कुछ दिनों से वामपंथी बुद्धिजीवी और ऐक्टिविस्टों का जो स्वर है, वह विरोध से ज्यादा बौखलाहट प्रतीत होता है। मेरे कई मित्र हैं, जो कह रहे हैं कि १६ मई, २०१४ की तारीख के बाद से देश का माहौल बिगड़ गया है। एक बड़े इतिहासकार ने तो आरएसएस की तुलना इस्लामिक स्टेट से कर दी। बिना किसी तथ्य के इस तरह की बात करना बौखलाहट नहीं तो क्या है? कुछ लोगों ने पुरस्कार वापसी का ही अभियान छेड़ दिया, वह भी सिरे नहीं चढ़ा। फिर रोहित वेमुला की आत्महत्या को दलित उत्पीड़न करार देकर राजनीतिक रोटियां सेंकने लगे, वहां से भी खाली हाथ लौटना पड़ा। इसकी वजह यही थी कि उनके मुद्दे रचनात्मक नहीं थे। उनका विरोध सिर्फ विरोध के लिए था। दरअसल, करीब ७ दशकों में इतनी बुरी तरह हाशिये पर जाने की स्थिति वामपंथियों ने कभी नहीं झेली थी, लेकिन मित्रो, ऐसा दौर भी आता है, राजनीति में आपको विपक्ष में भी रहना सीखना होगा। इस मामले में वामपंथी मित्र वैचारिक तौर पर अपने कट्टर विरोधी संगठन आरएसएस से भी सीख सकते हैं, जो दशकों तक सत्ता से दूर रहा, लेकिन भारत की बर्बादी की कामना कर कभी सत्ता में आने की कोशिश नहीं की।

○

नई दुनिया में प्रकाशित लेख

# भारत माता की जय से दिक्कत क्यों है?

**● हृदय नारायण दीक्षित**

श्रद्धा प्रत्यक्ष अनुभूति का परिणाम है। 'भारत माता' जम्बूद्वीप भरतखंड की श्रद्धा हैं। पंडित जवाहर लाल नेहरू की चर्चित पुस्तक 'द डिस्कवरी ऑफ इंडिया' (पृष्ठ ६१) का उपशीर्षक है 'भारत-माता'। उन्होंने अंग्रेजी में लिखी इस किताब में भारत माता को मदर इंडिया नहीं, भारत माता ही लिखा है - श्मैं इस सभा से उस सभा में जाता हूं। उत्तर से दक्षिण, पूरब से पश्चिम भारी भीड़ स्वागत में 'भारत माता की जय' की नारेबाजी करती है। मैं पूछता हूं - यह भारत माता कौन है, जिसकी विजय आप चाहते हैं? एक व्यक्ति कहता है - यह धरती। भारत की पवित्र धरती। मैं पूछता हूं - कौन-सी धरती? आपके गांव की? जिले की या राज्य की? या पूरे भारत की? प्रश्नोत्तर जारी रहते हैं। मैं कहता हूं कि आप जो सोचते हैं, वही भारत माता है, लेकिन इससे भी ज्यादा है वह। ये पर्वत, नदियां, वन हम आप सब भारत माता हैं। डॉ. राममनोहर लोहिया की एक किताब का नाम है 'भारत माता धरती माता'। लोहिया ने भारतीय संस्कृति, विविधता और अंतरंग एकता का तथ्यात्मक वर्णन किया है।

श्भारत माताष जीवमान सत्ता हैं। हजारों बरस पहले ऋग्वेद से लेकर आधुनिक काल तक भारत माता की श्रद्धा है। लेकिन ओवैसी की चुनौती है कि गर्दन पर चाकू रखो तो भी वह भारत माता की जय नहीं बोलेंगे। उन्होंने कहा है कि 'भारत माता की जय' संविधान में नहीं है। जन-गण-मन को राष्ट्रगान और वंदेमातरम् को राष्ट्रगीत संविधान सभा ने ही घोषित किया था। वंदेमातरम् भारत माता का ही जयघोष है। ओवैसी टाइप लोग इसे याद रखें तो अच्छा है।

भारत माता राष्ट्रभाव की चरम संवेदनशीलता है। चीन के संविधान (१९८२) के अनुच्छेद ५५ में मातृभूमि की रक्षा और आक्रमण का प्रतिकार प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। कम्युनिस्ट सोवियत संघ के संविधान (१९७७) के अनुच्छेद ६२ में भी समाजवादी मातृभूमि की रक्षा को नागरिक कर्तव्य कहा गया था। यह भी था कि मातृभूमि के प्रति द्रोह अपराध है। मिस्र के राष्ट्रगीत में भी देश माता है - 'ओ मदर ऑफ ऑल लैंड्स'। बांग्लादेश में भी देश मां है। स्वाधीनता संग्राम में 'भारत माता की जय' ही गूंज रही थी। राष्ट्रगीत वंदेमातरम् इसी का जीवमान प्रतिमान था। महात्मा गांधी ने १९३६ में लिखा, कवि भारत माता को सुहासिनी, सुमधुर भाषिणी, बहुबलधारणी और सुफला कहते हैं। यह समस्त मानव जाति को अपने में समा लेती है। मुस्लिम लीग ने भारत माता से इन्कार किया। गांधीजी ने 'हरिजन' में लिखा, 'मुझे नहीं लगता कि यह हिंदू गीत है। दुर्भाग्य से हम बुरे दिन देख रहे हैं।' बेशक वे बुरे दिन

थे। भारत को माता और एक राष्ट्र न मानने वालों ने देश तोड़ा।

भारतीय संविधान में लिखित 'मूल कर्तव्य' पठनीय हैं। लिखा है कि संविधान और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज व राष्ट्रगान का आदर करें। राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों का पालन करें। भारत माता की जय इसमें शामिल है। आगे लिखा है कि भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करें। ओवैसी का बयान संवैधानिक कर्तव्य के खिलाफ है। सारी दुनिया में मातृभूमि के साथ भावात्मक लगाव है, लेकिन यहां भारत माता और राष्ट्रभाव पर ही हमला है। निशाना नरेंद्र मोदी हैं, भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हैं।

खुन्नास का कारण संघ का विस्तार है। देश के सभी भाषायी व सभी भौगोलिक क्षेत्रों में भारत माता की जय है। अलगाववादी लस्त–पस्त हैं। स्वयंभू मजहबी नेताओं की कोई नहीं सुनता। स्वयंभू वामपंथी बौद्धिक भी हताश निराश हैं। ऐसे तत्व गठजोड़ कर रहे हैं। किसी का हीरो अफजल गुरु तो अगले का एलान कश्मीरी आजादी है। ओवैसी टाइप लोग इसी रेजगारी का हिस्सा हैं। वे मजहब की गलत व्याख्या करते हैं और चर्चा में बने रहने के लिए घटिया बयान देते हैं। स्वाधीनता आंदोलन की कांग्रेस भारत माता की जय बोलती थी, लेकिन अब कांग्रेस भी ऐसे खेल में शामिल है। कांग्रेसी नेता गुलाम नबी आजाद ने संघ और रक्त–पिपासु इस्लामिक स्टेट की तुलना की कोशिश की है। संघ की शाखा में प्रतिदिन नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमि का पाठ और भारत माता की जय का उद्घोष होता है। आजाद अपनी बात के लिए आजाद हैं, लेकिन ऐसी तुलना से उनकी भद हुई है। आरोप 'बैक फायर' हो गया है।

भारत एक विशाल देश है। अनेक भाषाएं, रीति–रिवाज, विभिन्न् भौगोलिक परिस्थितियों के बावजूद सवा अरब लोग भावात्मक रूप में एक हैं। राष्ट्रवाद के अंतरराष्ट्रीय विद्वान ईएच कार ने राष्ट्रगठन के लिए राष्ट्र की छवि से संबंधित समवेत भाव को जरूरी बताया है। भारत माता भरतजनों का ऐसा ही समवेत भाव है। भारत के लोगों ने इसे लगातार मजबूत किया है। संसद में भी राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत में भारत माता के जयघोष की शुरुआत १९९२ से हुई। केएच मुनियप्पा व मुमताज अंसारी के प्रश्न के उत्तर में मानव संसाधन मंत्री अर्जुन सिंह ने सभी विद्यालयों में राष्ट्रगान न हो पाने का उत्तर दिया। मुंबई के तत्कालीन सांसद (अब उप्र के राज्यपाल) राम नाइक ने चर्चा की मांग की। कहा, श्भगत सिंह वंदेमातरम् और भारत माता की जय बोलते हुए फांसी पर चढ़ गए। सारे देश में राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत दोहराने की आवश्यकता है। अर्जुन सिंह ने सारी बातें स्वीकार कीं। कहा कि सदन में राष्ट्रगानध्राष्ट्रगीत का अधिकार अध्यक्ष का है। लोकसभाध्यक्ष शिवराज पाटिल की अध्यक्षता वाली सामान्य प्रयोजन समिति ने दोनों के गायन का निर्णय लिया। संप्रति देश की सभी विधायी संस्थाओं में दोनों गीत गाए जाते हैं। हम सबको राष्ट्रभाव की मजबूती के लिए ऐसे प्रयत्न जारी रखने चाहिए। 'भारत माता की जय' हम सबकी ही जययात्रा है।

❍

# उस सुबह जैसा मैंने देखा...

● **हेमंत पाणिग्रही**

एक पत्रकार के जीवन में वैसे तो बहुत ऐसी घटनाएं होती हैं जो जीवन भर याद रहती है, कुछ घटनाएं गुदगुदाती हैं, तो कुछ रूलाती भी हैं, कुछ विस्मय पैदा करती है तो कुछ रोमांच, लेकिन ६ अप्रैल २०१० की वो सुबह आज भी सालती है, उस क्षण के स्मरण मात्र से ही अंतर्मन कांप जाता है। होता यूं है कि हर दिन मैं खबरों का इंतजार करता था उस दिन खबर मेरा इंतजार कर रही थी, ऐसी खबर जो पूरे मानव समाज को झकझोरने वाली।

उस दिन दफ्तर पहुचने पर एक खबर आयी कि बस्तर में एक बड़ा नक्सली हमला हुआ है, जिसमें कुछ सीआरपीफ के जवान मारे गए हैं। इस तरह की खबरों से नाता आम तौर पर हमेशा से रहा है। जब से पत्रकारिता में सक्रिय हुआ हूं तब से ही नक्सली वारदातों को कव्हर करता रहा हूं। लेकिन ताड़मेटा की बात कुछ और थी। खबरों का सिलसिला जारी था, लेकिन मरने वाले जवानों की संख्या कितनी है इस पर अभी भी संशय बना हुआ था। वास्तविक स्थिति को जानने के लिए मैं रायपुर स्थित सीआरपीएफ मुख्यालय पहुंचा लेकिन घटना को लकर वहां भी स्थिति स्पष्ट नहीं पायी थी। चारों ओर अफरातफरी का माहौल था, सीआरपीएफ मुख्यालय में लगातार बज रही टेलीफोन की घंटियों ने वहां तैनात जवानों की चिंता बढ़ रही थी। धीरे-धीरे सुचना मिलने लगी लेकिन वो भी अपुष्ट थी, इन सब के बीच एक बात थी वो यह थी कि मरने वाले जवानों की संख्या लगातार बढ़ रही थी, लेकिन वास्तविक संख्या कितनी थी यह अब भी स्पष्ट नहीं हो पाया था।

एक पत्रकार होने के नाते खबरों को लगातार प्रेषित करना मेरी ड्यूटी थी, लेकिन वहां का माहौल मुझे विलित कर रहा था।

स्थिति धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगी और दोपहर तक सब कुछ साफ हो गया, इस हृदय विदारक घटना में देश ने ७६ जवानों को खो दिया था, नक्सलियों की कायराना करतूत ने पूरे मानव समाज को हिला कर रख दिया था।

सीआरपीएफ मुखयलय में सन्नाटा और वहां तैनात अधिकारियों के चेहरे का भाव उनके मन की पीड़ा को बरबस ही दर्शा रहा था। मन की संवेदना ने मुझे भी सोचने पर मजबूर कर दिया कि आखिर इतनी बड़ी वारदात को नक्सलियों ने कैसे अंजाम दिया।

अब मैं अपने जीवन में कभी नहीं भूलने वाली घटना से रूबरू होने जा रहा था। सीआरपीएफ के मुख्यालय की एसाइनमेंट खत्म होने के बाद मुझे बस्तर में यथा स्थिति की रिपोर्टिंग के लिए कहा गया और तुरंत बस्तर जाने की व्यवस्था भी की गयी। बस्तर पहुचते ही मुझे शहीदों के शवों पर स्टोरी करने का निर्देश मिला और तैनाती जगदलपुर के महारानी

अस्पताल में हुई। यह वही स्थान था जहां असमय कालकवलित हुए जवानों का पोस्टमार्टम चल रहा था। यह एक ऐसा हृदय विदारक दृष्य था जिसे मैं आज स्मरण करता हूं तो अंदर से कांप जाता हूं। मैं एक ऐसे घटना का साक्षी था जो आने वाले समय में वर्ग संघर्ष को कलंकित करने जा रहा था, सर्वहारा समाज की लड़ाई की आड़ में हो रहे कुकर्मो की गाथा लिखने वाला था। अस्पताल में तैनात सिपाहियों के चेहरे तब देखने लायक होते थे जब किसी शहीद के परिजन का फोन आ जाता था। उस पीड़ा को शब्दों में वयां करना किसी के लिए भी संभव नहीं था।

जेएनयू छात्र संघ के अध्यक्ष के भाषण के बाद वह घटना बार-बार मन को विलित कर रही है। कन्हैया ने अपने भाषण में जब सीमा पर मरने वाले जवनों को अपना भाई बताता है तब मैं उससे यह पूछता हूं और मैं ही नहीं पूरा देश पूछता है कि ताड़मेटला में जिन ७६ जवनों को आपके सहोदर संगठन द्वारा बेरहमी से मार दिया गया वह किसके भाई थे, किसके पिता थे, किसके पति थे, जिनके मरने का जश्न आप गंगा ढ़ाबा पर गोमांस और मदिरा के साथ मनाया था, क्यों इसका भी जवाब देना चाहिए आपको।

क्या किसी के घर में मातम पसरा हो और आप जश्न मना सकते हैं? लेकिन इस घटना के बाद इस विश्वविद्यालय में जश्न मनाया गया। जिसकी चर्चा उस समय भी थी और वर्तमान में भी हो रही है।

आखिरकार देश की सबसे बड़े विश्वविद्यालय में विचारधारा के नाम पर क्या हो रहा है। पूरा देश देख रहा है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर यह कैसा गंदा खेल खेला जा रहा है, आखिर इसमें किसका हित निहित है।

अब एक सवाल यह उठता है कि बस्तर की आप नेत्री सोनी सोढ़ी जेएनयू कैंपस में जाकर कन्हैया कुमार से मुलाकात कर तथाकथित आजादी की मांग का समर्थन करती है। आप नेत्री सौनी सोढ़ी वहीं है जिन पर कुछ दिनों पहले अज्ञात लोगों ने हमला कर दिया था। उन पर हुए हमला की हम सब निंदा करते हैं । एक सवाल यह भी उठता है कि जेएनयू में जाकर कन्हैया कुमार का समर्थन करती है। परंतु बस्तर में नक्सली हमलों में मारे गए लोगों के परिजनों से मुलाकात क्यों नहीं करती हैं जिनके परिजन बस्तर विवि से संबंद्ध महाविद्यालयों में अध्ययनरत होंगे। अब लगने लगा है कि कुछ लोग अपनी राजनीतिक अस्तित्व को बंचाए रखने के लिए इस तरह के वातावरण को बनाए हुए हैं ताकि वो अपना तथाकथित वर्ग संघर्ष जारी रख सकें। लेकिन अब लगता है कि देशद्रोही शक्तियों का विरोध समूचा समाज एक जुटता के साथ कर रहा है और हम एक साथ सशक्त लोकतंत्र की ओर हैं।

❍

नई दुनिया में प्रकाशित लेख

# दकियानूसी कैसे हो गयी देशभक्ति?

● **प्रो. गिरीश्वर मिश्र**

वैश्वीकरण के दौर में देश और राष्ट्र जैसे शब्द पुराने पड़ते जा रहे हैं। अंग्रेजी का कंट्री शब्द गंवई क्षेत्र की ओर संकेत करता है। नेशन एक अमूर्त विचार है, जिसका स्वरूप उसके मानने वालों के अपने नजरिये पर ही निर्भर करता है। यह भी एक प्रचलित मत है कि नेशनलिज्म का कोई एक अर्थ नहीं होता, वह एक बहुलार्थी शब्द है जिसका उपयोग किसी भी ढंग से किया जा सकता है। शस्यश्यामलाम्‍ मलयजशीतलाम्‍ मातरम्‍ बंदेमातरम्‍ कहकर देश को याद करना आज की अधुनातन सोच से मेल नहीं खाता है। देश को मां कहना और स्वयं को देश का पुत्र मानना अर्थात देश पहले है और हम बाद में, आज कुछ उल्टी–पुल्टी–सी बात लगने लगी है। हमारे बुद्धिशील और सयाने हो चुके मानस को यह बात गले नहीं उतरती है। आज भूमंडलीकरण की फिजा में बुद्धिजीवी वर्ग की दिन–प्रतिदिन अधिकाधिक अंतरराष्ट्रीय होती शब्दावली के लिए तो देश जैसा शब्द और उससे जुड़ी भावनाएं और अभिव्यक्तियां बेमानी–सी पड़ती जा रही हैं। विश्व नागरिक होते हुए हमारी आगे बढ़ती हुई सोच के लिए देश जैसा शब्द छोटा पड़ता जा रहा है। बचपन के समय बालमन में देश का एक सजीव अस्तित्व वाला रूप बैठ गया था देश को लेकर किसी तरह का प्रश्न या संदेह नहीं था तब का याद किया गीत विजयी विश्व तिरंगा प्याराध्झंडा ऊंचा रहे हमारा आज हमें एक सीमित मानसिकता वाला लगने लगा है। और हमारे कई सम्मान्य मित्रों को इसमें फासिस्ट सोच की बू आने लगी है। हम बच्चे थे तो यह बड़ा प्यारा, जीवंत और आशाओं भरा लगता था तब हम सब सत्य, अहिंसा, हरियाली, हवा, पानी, रिश्ते–नाते आदि के सौंदर्य पर मुग्ध–चकित रहते थे। यह सब अब धीरे–धीरे अपरिचित या अनपहचाना–सा होता गया है। हम परिपक्व हो रहे हैं और नैसर्गिक स्वाभाविक के बदले कृत्रिम और अपनी बनावट के पीछे दीवाने हुए जा रहे हैं। देश की अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगाना भारतीय बुद्धिजीवियों का शगल हो रहा है। जब आज के भारतीय गणतंत्र की रचना हो रही थी और भारतीय संविधान का निर्माण चल रहा था उस दौरान पूरे देश से आए सभा के प्रतिनिधियों की लंबी बहसों के बाद सहमति से बहुत से निश्चय किए गए थे और देश की अवधारणा और उसे चलाने के तौर–तरीकों को लेकर नियम कानून की व्यवस्था स्वीकार की गई थी। हां, हमारे राजनीतिक नायकों ने संवैधानिक व्यवस्था में इसकी जगह जरूर छोड़ रखी कि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर प्रचलित व्यवस्था में आवश्यक सुधार करने की गुंजाइश बनी रहे, पर उन्हें भारत देश के अस्तित्व और परिभाषा के बारे में किसी तरह का संदेह नहीं था। भारत देश की महत्वाकांक्षाओं और उसकी ज्ञान तथा

संस्कृति की परंपराओं को लेकर कोई संशय नहीं था। यह जरूर था कि इन प्रश्नों और इनसे जुड़े सरोकारों को लेकर भिन्न दृष्टियों को सुनने-समझने की छूट थी। देश में व्याप्त विविधता देश की ताकत के रूप में ली गई थी, न कि कमजोरी के रूप मे। देश के नायकों में बड़े उत्साह से सबको साथ लेकर चलने की कोशिश की जाती रही, पर कहीं छोटे राजनीतिक लाभ भी नजर में बने रहे किसी समस्या या प्रश्न पर सोचते वक्त वोट बैंक की चिंता और उसके लिए तुष्टीकरण करते रहने की नीति अपनाने का सीधा-सरल नुस्खा अपनाया जाता रहा। आज किस्म-किस्म के बढ़ते आरक्षण की गुहार इस बात का प्रबल प्रमाण है मूलतः आरक्षण सकारात्मक कदम था, जो वंचित समुदायों के सशक्तीकरण की मानवीय जरूरत को ध्यान में रखकर किया गया। इसका एक पुष्ट जातिगत आधार था, जो सदियों पुरानी भेदभाव की एक कड़वी सच्चाई थी पर बदलती परिस्थितियों में भी बिना किसी तरह के आकलन या मूल्यांकन के इसे ज्यों का त्यों लागू करते जाना और शिक्षा में प्रवेश, नौकरी और अन्य सुविधाओं के वितरण में छह-सात दशकों में इसकी मात्रा बढ़ते जाना तर्क से परे है। ऐसा करते जाना सामाजिक भेदभाव, समरसता और सामाजिक उन्नति की दृष्टि से हमें कहां ले जा रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। देश और देशभक्ति जैसे विचार की चर्चा करना अब दकियानूसी सोच और नजरिए में एक तरह के पिछड़ेपन का द्योतक माना जाने लगा है। ये विकसित हो चुके या हो रहे तमाम लोगों के लिए आज अप्रासंगिक हैं या फिर प्रगति के मार्ग में रोड़ा बनकर खड़े विचार लगते हैं। कुछ विचारशील बुद्धिमान लोग इन अवधारणाओं को संशयग्रस्त और अधकचरा बताते हुए कनटेस्टेड की श्रेणी में रख देते हैं। मौलिकता के लिए जब विचार और तर्क-कुतर्क बनने लगता है तो संदेह का दायरा बढ़ता जाता है और अपना अस्तित्व ही पराया लगने लगता है। ऐसे में भारत और भारतीयता जैसे शब्द हमारे बीच चल रहे कुछ बौद्धिक विमर्शों में अभी भी अनसुलझे या अनिश्चित से ही माने जाते हैं और एक कठिन संभावना की तरह पेश किए जा रहे हैं। देशप्रेम या देश से लगाव उत्तर-स्वतंत्रता के समय में पुनर्परिभाषित करना जरूरी है, पर क्या इसके लिए देश के टुकड़े-टुकड़े कर के ही पुनः विचार शुरू किया जा सकता है। देश की परिधि के अंदर क्या हो और कैसे हो, यह देश की अवधारणा से भी जुड़ा सवाल है। छद्म बौद्धिकता के साथ जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का आवरण भी लगा हो तो एक खास तरह के सरलीकृत यथार्थ की ही निर्मिति होती है। इसे संस्थागत रूप दे देने के बाद चारों ओर से इतनी परिपुष्टि होने लगती है कि हम अतिवादिता की अति को भुलाकर उसे ही यथार्थ मान बैठने की गलती करने लगते हैं। देश और समाज के प्रति प्रतिबद्धता और समता, समानता, बंधुत्व को लेकर ही हम गरीबी और भेदभाव की महामारी से लड़ सकेंगे। ○

दैनिक जागरण में प्रकाशित लेख

# राष्ट्रीय विमर्श का अपहरण

**● बलवीर पुंज**

भारतीय जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक के समापन भाषण में प्रधानमंत्री मोदी ने राष्ट्रीय विमर्श को पुनरू विकास पर लौटाने का प्रयास किया है। गरीबी, बेरोजगारी, कृषि में आबादी के बड़े भाग की निर्भरता के बावजूद सकल घरेलू उत्पाद में कृषि के घटते योगदान, राष्ट्रीय सुरक्षा आदि देश की मूल समस्याएं हैं। परंतु जो राष्ट्रीय विमर्श है वह उन मुद्दों के इर्दगिर्द नहीं हैं जो राष्ट्र के जीवन-मरण के प्रश्न हैं। लोकसभा चुनाव के दौरान और उसके बाद सरकार गठन के साथ ही प्रधानमंत्री मोदी ने राष्ट्रीय विमर्श को देश के सर्वांगीण विकास पर केंद्रित रखने का प्रयास किया है। छोटे उद्यमियों को मुद्रा बैंक से सक्षम बनाना, काले धन के खिलाफ कानूनों को खड़ा करना, भ्रष्टाचार पर नकेल कसना, देश में आधारभूत ढांचे को पटरी पर रखना और इस बजट में दशकों बाद गांव, खेत व किसान को फोकस में लाना राजग सरकार की कार्यशैली का बोध कराती है। पिछले दो साल में विपक्ष और मीडिया सरकार के खिलाफ भ्रष्टाचार का एक भी मामला नहीं ला पाया है और इसीलिए निर्थक मुद्दों पर सरकार को घेरने और राष्ट्र की छवि धूमिल करने का षड्यंत्र चल रहा है। १उत्तर प्रदेश के दादरी कांड के बाद देश में असहिष्णुता का हंगामा खड़ा किया गया। दुनियाभर में ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण छिटपुट घटनाएं आए दिन होती हैं। अमेरिका में सिखों के साथ र्दुव्याहार की घटनाएं सामने आती रही हैं। वहां का सभ्य समाज ऐसी घटनाओं को स्वीकार नहीं करता। किंतु कभी भी ऐसी घटनाओं को अतिरंजित कर पेश नहीं किया जाता। राजनीतिक लाभ लेने के लिए देश की छवि कलंकित नहीं की जाती। ऐसी छिटपुट घटनाओं के बावजूद राष्ट्रीय विमर्श का फोकस देश की मूल समस्याओं पर होता है। दादरी की दुखद घटना के बाद देश में अवार्ड वापसी का अभियान चलाया गया। गिनती के बुद्धिजीवियों और फिल्मी कलाकारों के द्वारा इस देश की बहुलतावादी संस्कृति को लांक्षित करते हुए जिस तरह समाज के एक वर्ग में भय का माहौल पैदा करने का कुप्रयास किया गया, उससे दुनिया में क्या संदेश गया? १दादरी के बाद देश में गोमांस को लेकर कोहराम मचाया गया। अभी पिछले दिनों फिल्मकार जावेद अख्तर ने इस संदर्भ में जो जवाब दिया, उस सच को बोलने की हिम्मत कितने साहित्यकारों-बुद्धिजीवियों-कलाकारों में है? नहीं है तो क्यों? गोमांस भक्षण के प्रश्न पर जावेद साहिब ने कहा कि वह गोमांस नहीं खाते, क्योंकि उनके बापदादों ने नहीं खाया। उन्होंने मेरे एक लेख का जिक्र करते हुए बताया कि १८५७ की क्रांति के बाद जब दिल्ली के तख्त पर बहादुर शाह जफर की ताजपोशी हुई तो उन्होंने अपने पहले फरमान में ही गोकशी करने वालों को तोप से उड़ाने की सजा निश्चित की थी। इतनी साफगोई राष्ट्रीय विमर्श में कहां दिखाई देती है? गोवंश और उससे मिलने वाले पंचगव्यों का किस तरह और बेहतर दोहन हो, अर्थव्यवस्था में उनका योगदान कैसे बढ़े, इसकी चिंता करने की जगह गोमांस भक्षण को मौलिक अधिकार

की तरह पेश किया जा रहा है। इस देश में कितने प्रतिशत लोग होंगे, जो चाव से गोमांस खाते हैं? वहीं कितने प्रतिशत ऐसे हैं, जो गाय को माता मानते हैं और ऐसी चर्चा चलने पर आहत महसूस करते हैं?१इसी तरह हैदराबाद विश्वविद्यालय के छात्र रोहित वेमुला की आत्महत्या को अतिरंजित कर देश की छवि कलंकित करने की कोशिश हुई। इसे समाज में दलितों के साथ होने वाले कथित भेदभाव का परिणाम बताया गया। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था है, यह एक सच्चाई है और यह कुरीति सामाजिक और राजनीतिक, दोनों स्तरों में विद्यमान है। सेक्युलरवाद के नाम पर राजनीतिक दलों ने इसका निरंतर दुरुपयोग और दोहन किया है। उन्होंने मजहब के नाम पर मुसलमानों को जहां इकट्ठा किया, वहीं जातिपांत के नाम पर हिंदू समाज को तोड़ने का काम किया है। राष्ट्रीय विमर्श को तो समाज से अगड़ों-पिछड़ों के अंतर मिटाने, सामाजिक-आर्थिक विषमता दूर करने और हाशिये पर रह गए दलितों-वंचितों के उत्थान पर केंद्रित होना चाहिए था। वह चिंता क्यों नहीं दिखाई देती?१कुछ समय से जेएनयू का मुद्दा गरमाया हुआ है। देशद्रोही कृत्य के आरोप में यहां के दो-तीन छात्रों को कानून के दायरे में लाया गया तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में होने का बवाल खड़ा किया गया। पुलिस की कार्रवाई को विश्वविद्यालय की स्वायत्तता पर आघात बताने वाले भूल जाते हैं कि जेएनयू में पुलिस कार्रवाई की यह अनोखी घटना नहीं है। १९८३ में इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री थीं, तब यहां के एक छात्र जलीस अहमद का केवल छात्रवास बदले जाने पर छात्रों ने ऐसा बवाल काटा कि वहां पुलिस भेजनी पड़ी थी। तब छात्रों ने कुलपति समेत विश्वविद्यालय के बड़े अधिकारियों को ५० घंटे से बंधक बना रखा था और बड़े पैमाने पर परिसर में तोड़फोड़ की गई थी। बलवे के आरोप में ३५० छात्रों को गिरफ्तार किया गया और एक महीने तक जेएनयू में ताला लगा रहा।१भारत माता की जय बोलने को लेकर चल रहा विवाद भी समझ से परे है। इस नारे के पीछे तो कभी पूरा देश अंग्रेजों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ था। वंदे मातरम, जय हिंद, जय भारत एक ही भावना को प्रकट करते हैं। इसमें किसी की मजहबी भावना कैसे आहत होती है? नवजवान अपने देशप्रेम को प्रकट करने के लिए भारत माता की जय के नारे लगाएं, इस सुझाव पर फसाद खड़ा करना देश की समस्याओं से ध्यान भटकाने का षड्यंत्र है। समेकित विकास की योजनाओं के गुणदोष पर चर्चा की जगह यदि इसी तरह राष्ट्रीय विमर्श में निर्थक मुद्दों को बार-बार फोकस में रखने की प्रवृत्ति चलती रही तो यह देश के बढ़ते कदमों पर अवरोध ही खड़े करेगा। अधिकारों के साथ कर्तव्य भी जुड़ा होता है और हर सजग राष्ट्रभक्त का यह कर्तव्य बनता है कि वह ऐसे अवरोधों को ध्वस्त करे।

नई दुनिया में प्रकाशित

# खुद से जरूरी सवाल पूछने होंगे हमे

● **जगमोहन सिंह राजपूत**

जब देश में सियाचिन में शहीद हुए भारत के सपूतों के शवों की प्रतीक्षा हो रही थी, सारा देश लांसनायक हनुमनथप्पा के जीवन के लिए प्रार्थना और दुआएं कर रहा था, तब दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में देश विरोधी नारे लगाए जा रहे थे और ये नारे उस इतिहास को दोहरा रहे थे जो यहां वामपंथियों की शह और बाहरी सहायता से वहां लगातार चलता रहा है बहुत लोगों को उस समय की याद शायद न हो, जब देश में सोवियत लैंड पुरस्कारों का जमकर वितरण होता था और जाने-माने वामपंथियों का सोवियत संघ में आना-जाना एक आम बात थी युवाओं के लिए सस्ती पुस्तकें अनेक भाषाओं में उपलब्ध रहती थीं देश को वामपंथियों की उस रणनीति को समझने में अनेक वर्ष लगे जेएनयू में भी यही रणनीति अपनाई गई वामपंथी दलगत आधार पर कितने ही धड़ों में बंटे रहते हों, व्यवस्था-विनाश की रणनीति अपनाने में वे हर देश में एक साथ आने में देरी नहीं करते रहे हैं । यह अलग तथ्य है कि साम्यवाद अब केवल अंशमात्र भारत में और वह भी जेएनयू जैसी संस्थाओं में ही बचा है राजनीतिक प्रश्रय के कारण इसे यहां दाना-पानी दिल खोल कर दिया जाता रहा लेकिन इस दरियादिली से देश को मिला क्या? देश के ही कुछ युवा देश को बर्बाद करने के रास्ते ढूंढ़ने लगे यहां जो कुछ होता रहा और निर्बाध बढ़ता रहा, उसे जानबूझकर न तो पहचाना गया और न रोकने का कोई प्रयास किया गया यहां यह लगातार दोहराया जाता है कि विश्व में युवाओं ने ही बड़े-बड़े क्रांतिकारी आंदोलन सफलतापूर्वक चलाए देश में ही असम गण परिषद की सफलता तथा १९७७ में कांग्रेस की दुर्दशा युवाओं के आंदोलन के कारण ही हुई थी देश या विदेश में ऐसा कोई युवा आंदोलन कभी नहीं हुआ, जहां युवाओं ने अपने ही देश की बर्बादी की आवाज उठाई हो जेएनयू में जो हुआ वह अंततः भारत विरोधी शक्तियों के षड्यंत्र का ही एक और प्रयास सिद्ध होगा और षड्यंत्र किसी आंदोलन की नींव नहीं डालते हैं ऐसी नींव तो वे ही डाल सकते हैं, जिनके हृदय में लोगों के प्रति, देश के प्रति, मानव मूल्यों के लिए प्रतिबद्धता होगी, अपने पर विश्वास होगा और जो दूसरों की कठपुतली नहीं होंगे जेएनयू को वैश्विक स्तर पर एक श्रेष्ठ वैचारिक केंद्र बनना था जहां पर ज्ञान का, विज्ञान का, प्राचीन और आधुनिक ज्ञान का अध्ययन, मनन, चिंतन होगा और तत्पश्चात जो नवीन ज्ञान तथा कौशल विकसित होंगे उनका देश हित में उपयोग कैसे हो, इस पर कर्मठता से आगे बढ़ा जाएगा वहां से जंग रहेगी, जंग रहेगी भारत की बर्बादी तक जैसे नारे सुनकर कौन भारतीय शर्मिंदा नहीं होगा? जेएनयू में जो अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर हुआ, हो

रहा है और जो समर्थन उसे जाने-पहचाने सूत्रों से मिल रहा है, वह और कुछ हो या न हो, भारत के संविधान तथा उसकी न्यायपालिका के सर्वोच्च संस्थान का खुला अपमान और अवमानना तो है हीयिँ।यॅ ।सारा देश जानता और मानता है कि जेएनयू उच्च शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में युवा प्रतिभा निखारने के लिए विशेष रूप से स्थापित किया गया था इसके लक्ष्य को ध्यान में रख कर केंद्रीय सरकार यहां दिल खोल कर अनुदान देती रही है सभी को यह भी ज्ञात है कि वामपंथियों ने अनेक देशों में सत्ता तक पहुंचने के लिए पहले संस्थाओं के अंदर प्रवेश कर उन पर अधिकार जमाने को पहली सीढ़ी माना है जब दायरे इतने संकुचित हो जाते हैं, तब हर प्रकार का आत्म-अनुशासन भी तिरोहित जाता है और लोग उसी व्यवस्था को जर्जर करने पर उतारू हो जाते हैं, जो कि उनका भरण पोषण करती हैंयिँ।यॅ ।जेएनयू में आजादी मांगने वाले देश के हर प्रांत से आए और जम्मू-कश्मीर की सीमा की सुरक्षा में शहीद होने वाले बहादुरों को दुश्मन मानते हैं, मगर भारत की संसद पर आक्रमण करने वालों को सजा दिए जाने को अन्याय मानते हैं और उन गुनहगारों को पूजना चाहते हैं यह समझना भी कठिन है कि कर्नाटक का हनुमनथप्पा कश्मीर की सुरक्षा के लिए जीवन देता है, मगर यदि उसकी पत्नी वहां बसना चाहे तो उसे यह अधिकार नहीं ऐसी विडंबनाओं से भरे दौर में देश को खुद से जरूरी सवाल पूछकर बड़े फैसले लेना होंगे। जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा में हर प्रांत के युवा जान तो दे सकते हैं और दे रहे हैं, मगर उनके परिवारों को वहां बसने का अधिकार नहीं है ऐसा कोई नहीं है, जिसे रोहित वेमुला की आत्महत्या से दुःख न हुआ हो मगर ऐसे भी लोग हैं, जो बेशर्मी से इस आत्महत्या पर राजनीति की रोटियां सेंक रहे हैं लगातार हो रही किसानों की आत्महत्याओं पर वे विचलित नहीं होते हैं, न संसद में उस पर चर्चा करते हैं और न इन्हें रोकने के उपाय ढूंढ़ते हैं यही तत्व हैदराबाद के तार जेएनयू से जोड़ते हैं, फिर उन्हें जादवपुर तक पहुंचा देते हैं इनके संकुचित स्वार्थ इनकी दृष्टि को केवल दलगत स्वार्थ तथा अगले चुनाव तक सीमित कर देते हैं ऐसी कोई सरकार आज तक प्रजातंत्र में बनी ही नहीं, जिसके कार्यों की शत-प्रतिशत लोग सराहना करें सत्ता से हटने के बाद नई सरकार के कार्यों में बाधा डालना जनमत का खुला अपमान है मुस्लिम वोट बैंक के लिए हर प्रकार के दांव-पेंच बेहिचक चलने वाले राजनेता अपने विरोधियों को सांप्रदायिक घोषित करते रहते हैं यदि मुस्लिम समाज को भी आगे आना है तो उसे इन तत्वों से बचना होगा।

# इकहरी सोच से कैसे निकलेगा रास्ता ?

**● क्षमा शर्मा**

नई दुनिया में प्रकाशित लेख

हमारे देश में सेक्युलरिस्ट हर एक से सवाल पूछते रहते हैं, मगर उनसे कभी कोई सवाल नहीं पूछा जा सकता। उनसे सवाल पूछते ही आप सांप्रदायिक कहलाए जा सकते हैं। जो लोग अकसर दूसरों से लोकतंत्र और लोकतांत्रिक अधिकारों की मांग करते रहते हैं, वे अपने यहां किसी प्रकार का लोकतंत्र और असहमति बर्दाश्त नहीं कर सकते।

शायद ऐसे ही असहिष्णु लोगों को जावेद अख्तर ने सही जवाब दिया। उन्होंने हर धर्म के कट्टरतावादी को ललकारा। जावेद जैसी हिम्मत आज कितने लेखकों के पास है कि वे ध्रुवीकरण करने वाले हर व्यक्ति को ललकार सकें। राजनेताओं को तो शायद वोट जाने का डर सताता है, मगर लेखकों के सामने ऐसी क्या मजबूरी है कि वे चुनकर बोलें और चुनकर चुप रहें? जावेद की पत्नी और अभिनेत्री शबाना आजमी ने एक बार कहा भी था कि सरकारें हम जैसे उदार मुसलमानों के मुकाबले कट्टरपंथियों की ज्यादा सुनती हैं। सत्ता में दल कोई भी आ जाए, नफरत फैलाने वालों को मिलती इज्जत कभी कम नहीं होती।

कुछ दिन पहले की खबर है कि सलमान रूश्दी को मारने वाले के लिए ईरान सरकार ने राशि बढ़ा दी है। लेकिन अपने यहां शायद ही किसी लेखक ने इस पर मुंह खोला। रूश्दी के लेखक होने, उनकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सबसे पहले उनके मनुष्य होने के अधिकार की याद किसी को न आई। आखिर क्यों? इस बारे में मुंह न खोलना पड़ जाए, इससे बचने का आसान-सा रास्ता खोज लिया गया कि हमें भारत की चिंता है। रूश्दी का मामला ईरान का है। लेकिन रूश्दी को तो जयपुर साहित्य उत्सव में भी नहीं आने दिया गया था। तसलीमा नसरीन का मामला भी ऐसा ही है।

विवादित ढांचा टूटने के बाद बांग्लादेश और कश्मीर में जाने कितने मंदिर तोड़ दिए गए थे। हिंदू बांग्लादेश और कश्मीर में अल्पसंख्यक हैं। तसलीमा ने इन्हीं अल्पसंख्यकों का पक्ष लेते हुए लज्जा नाम से उपन्यास लिखा था। इस अपराध के रूप में उनकी जान पर बन आई थी। उन्हें बांग्लादेश छोड़ भागना पड़ा था। वे कोलकाता में रहने लगीं। लेकिन पश्चिम बंगाल की कथित सेक्युलर सरकार को लगा कि चूंकि तसलीमा ने हिंदुओं का पक्ष लिया है इसलिए वह इस्लाम विरोधी हैं। कहीं उनके कारण उनसे मुसलमान न नाराज हो जाएं, यह सोचकर वह सरकार जो अल्पसंख्यकों की पक्षधर कहलाती थी, उसने अपने देश के अल्पसंख्यकों यानी हिंदुओं का ही पक्ष लेने के अपराध में तसलीमा को अपने यहां से जाने को मजबूर किया।

इसी तरह कश्मीरी पंडितों का मसला है। जिन दिनों कश्मीरी पंडितों को वहां से भागना पड़ा, वहां नेशनल कांफ्रेंस की सरकार थी, जो बढ़ती सांप्रदायिकता से बड़ी चिंतित रहती है। मगर उसी के राज में वहां के अल्पसंख्यकों को सिर्फ उनके धर्म के कारण भगा दिया गया। आज तक कोई बिना किंतु-परंतु किए इन निर्वासित लोगों को फिर से बसाए जाने की बात नहीं करता। दिसंबर १९९२ में अयोध्या में विवादित ढांचे का टूटना एक खतरनाक घटना थी। इस घटना से हिंदू-मुसलमानों का तेज ध्रुवीकरण हुआ और दोनों तरह के संप्रदायवादियों को इसका लाभ मिला। मगर जो लोग बाबरी मस्जिद के लिए बहुत परेशान नजर आए, उनके देखते-देखते अफगानिस्तान के बामियान में बुद्ध की प्राचीन मूर्ति को तहस-नहस कर दिया गया, मगर किसी को यह बात निंदा के योग्य नहीं लगी। किसी ने इस पर हतों, महीनों, सालों बहस नहीं चलाई। सांप्रदायिकता के सवालों पर भी चुनकर बोलना, चुनकर चुप रहना हमारी चालाकी और इस बात की जोड़-तोड़ को बताता है कि किस बात पर बोलने से मीडिया में ज्यादा कवरेज मिलता है और किस बात पर चुप रहने से बहुत से सवालों से कन्नी९ काटी जा सकती है।

हमारी सरकारें, राजनीतिक दल, नेता, साहित्यकार, पत्रकार सच को सच कहना भूल गए हैं। कई बार इसीलिए लोकतंत्र पर शक होने लगता है कि अगर सच बोलना, सही और गलत में फर्क करना भी सिर्फ इसलिए अपराध हो कि कहीं इससे कोई नाराज न हो जाए तो क्या सचमुच इसे स्वस्थ समाज की निशानी कहा जा सकता है।

यजीदी लड़कियों के साथ आईएस वाले कितना अत्याचार कर रहे हैं। एक-एक लड़की के साथ सैकड़ों बार दुष्कर्म किया जा रहा है। फिर मन भरने के बाद उन्हें दूसरों को बेचा जा रहा है। इन अभागी लड़कियों की दास्तानें अखबारों में छपी हैं, लेकिन उनकी मुसीबतों पर इक्का-दुक्का आवाजों के अलावा शायद ही कोई बोला है। क्या ये लड़कियां, लड़कियां नहीं हैं? क्या इनके औरत होने के कोई अधिकार नहीं?

हमारे यहां के बहुत से अल्ट्रा लेफ्ट का पवित्र तीर्थ स्थल चीन है। वहां के बारे में आपने पढ़ा ही होगा कि वहां पर उइगर लोग मुसलमान हैं और चीनी सरकार के अनुसार उनमें से बहुत से आतंकवादी गतिविधियों में शामिल हैं। उनके लिए एक सरकारी आदेश जारी किया गया था, जिसमें कहा गया था कि बुर्का पहनने वाली औरतें और दाढ़ी रखने वाले पुरुष सरकारी बसों में यात्रा नहीं कर सकेंगे। वहां की सरकार के इस आदेश पर हमारे देश के उन लोगों ने कोई चिंता प्रकट नहीं की, जो दंतेवाड़ा में माओवादियों द्वारा सैनिकों के मरने की बड़ी आसानी से अनदेखी कर देते हैं। जब ये सैनिक मरे थे तो इनके घरों और परिवारों के बारे में पत्र-पत्रिकाओं में छपा था। ये बेहद गरीब घरों से आते थे और सही मायनों में वंचित वर्ग से ताल्लुक रखने वाले थे। इनके परिवार के लोग एक-एक रोटी के लिए मोहताज थे। मारे गए सैनिकों में से बहुत-से तो अपने परिवारों का पेट भरने का एकमात्र सहारा थे, मगर मानवधिकारों की दुहाई देने वालों को इन परिवारों के दुरूख नजर ही नहीं आए।

❍

यथावत में प्रकाशित रपट के कुछ अंश

# जेएनयूः नहीं थम रहा हो-हल्ला

**● ब्रजेश कुमार**

नौ फरवरी की घटना के बाद देश के तमाम बुद्धिजीवियों ने कहा था कि संस्थान पर किसी विचारधारा का रंग नहीं चढ़ना चाहिए। संस्थान में विचारधाराओं को हमेशा अकादमिक रूप में देखा जाना चाहिए, लेकिन जेएनयू ने अपनी अलग पहचान बनाई। पढ़ें एक रिपोर्ट

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में लगे राष्ट्रविरोधी नारे पर चली बहस से मुद्दा गायब है। यह एक रणनीति के तहत किया जा रहा है। जेएनयू के ही एक छात्र ने यह दावा किया। उसने बताया कि इसकी रणनीति तैयार करने में जेएनयू के कुछेक प्राध्यापक भी शामिल हैं। वह रणनीति क्या है? इस सवाल पर छात्र ने बताया,” ९ फरवरी की घटना से ध्यान भटकाने की कोशिश हो रही है। इस मसले को पटल से गायब कर दिया गया है कि जेएनयू में राष्ट्रविरोधी नारे लगे थे। परिसर में समय-समय पर होने वाली राष्ट्रविरोधी गतिविधि पर भी पर्दा डालने की कोशिश हो रही है। बहस कन्हैया कुमार के एक जुमले पर आ टिकी है कि ‘हमें भारत से नहीं, भारत में आजादी चाहिए।’ वहीं कन्हैया कुमार के विवादित बयान देने का सिलसिला जारी है। आठ मार्च को कन्हैया ने जो भाषण दिया है, उसके खिलाफ दिल्ली के बसंत विहार थाने में शिकायत दर्ज कराई गई है।

तीन मार्च की बात है, कन्हैया कुमार को सशर्त जमानत मिली तो इस बात को बढ़ा-चढ़ाकर बनाया गया कि वह पाक-साफ है। उसने कोई गलती नहीं की। दिल्ली पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर भारी अपराध किया था। स्मरण रहे कि कन्हैया की गिरफ्तारी पर जगह-जगह तीखी प्रतिक्रिया हुई थी। यह बात कही गई थी कि दिल्ली पुलिस ने जल्दबाजी में कदम उठाया है। कुछेक प्रशासनिक गलतियां भी हुई थीं, जिससे केंद्र सरकार की भारी किरकिरी हुई। जेएनयू छात्र संघ के प्रतिनिधि और वामपंथी पार्टियां दावा कर रही हैं कि कन्हैया दोषी नहीं है। लेकिन, वे यह नहीं बता रहे हैं कि ‘भारत की बर्बादी’ के नारे लगाने वाले कौन लोग थे?

खैर, जांच चल रही है। इस बाबत जेएनयू के रजिस्ट्रार भूपिंदर जुत्शी का दावा है कि जेएनयू छात्र संघ अध्यक्ष कन्हैया कुमार ने संसद पर हमले के दोषी अफजल गुरु की फांसी के खिलाफ विवादास्पद कार्यक्रम की इजाजत रद्द किए जाने पर आपत्ति की थी। रजिस्ट्रार ने कुलपति एम. जगदीश कुमार की ओर से गठित उच्च अधिकार प्राप्त जांच समिति के सामने यह बात कही है। सूत्रों के मुताबिक समिति के सामने जुत्शी ने कहा है, ‘मैंने अपने कार्यालय में नौ फरवरी को दोपहर तीन बजे जेएनयूएसयू की एक बैठक बुलाई थी ताकि अशक्त छात्रों के लिए नई बस के मार्ग पर चर्चा हो सके। कन्हैया कुमार और रमा नागा (जेएनयूएसयू

महासचिव) सबसे पहले पहुंचे। दोपहर करीब तीन बजे हमने बस मार्ग पर चर्चा की। दस मिनट बाद जेएनएसयू के संयुक्त सचिव सौरभ शर्मा भी आए। हम सभी ने दस मिनट तक बस मार्ग पर चर्चा की।' उन्होंने आगे कहा कि शर्मा ने बाद में मुझे अफजल गुरु की 'न्यायिक हत्या' पर एक 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' का पर्चा दिखाया और कहा कि कुछ छात्र आज शाम पांच बजे साबरमती ढाबा में इस कार्यक्रम का आयोजन कर रहे हैं।' रजिस्ट्रार ने आगे कहा कि जब विश्वविद्यालय ने अनुमति वापस लेने का फैसला किया तो कन्हैया ने इस पर एतराज जताया था। इस पर जेएनयू छात्र संघ ने आपत्ति की है। उसने आरोप लगाया है कि रजिस्ट्रार भुपिंदर जुत्शी ने जांच समिति के सामने गलत बयान दिया है। छात्र संघ ने दावा किया है कि जुत्शी का बयान गलत है और ऐसी कोई मुलाकात हुई ही नहीं थी।

पिछले दिनों कन्हैया को लेकर संसद में भी सवाल उठे। राज्यसभा में नेता प्रतिपक्षा गुलाम नबी आजाद ने कहा, ”कन्हैया के ऊपर दो इनाम रखे जा चुके हैं। जहां किसी ने उसकी जीभ काटने पर इनाम रखा है तो वहीं दूसरी तरफ किसी ने उसकी जान लेने पर इनाम घोषित कर रखा है। ऐसे में कन्हैया की सुरक्षा चिंता का विषय है।“ इसका जवाब देते हुए सरकार ने कहा कि कन्हैया को आवश्यक सुरक्षा मुहैया कराई जाएगी। गुलाम नबी आजाद की इस चिंता पर अलग-अलग प्रतिक्रियाएं आई हैं। जेएनयू के पूर्व छात्र विकास आनंद कहते हैं, ”जेएनयू परिसर में राष्ट्र को तोड़ने की बात होती है। आतंकी अफजल गुरु का शहीदी दिवस मनाया जाता है। इस पर वे क्या राय रखते हैं? इस मुद्दे पर उन्हें अपना पक्ष साफ-साफ रखना चाहिए।“

स्मरण रहे कि राष्ट्रद्रोह के आरोप में जमानत पर तिहाड़ जेल से रिहा होने के बाद कन्हैया कुमार चार मार्च को देर रात जेएनयू परिसर पहुंचा। वहां उसने छात्रों को संबोधित किया। अपने ४० मिनट से अधिक के भाषण में कन्हैया ने केंद्र सरकार को निशाने पर लिया। उसका भाषण सोशल मीडिया पर वायरल हुआ। भाषण के दौरान जो तथ्य कन्हैया ने दिए, उस पर जेएनयू के ही प्रोफेसर कवि मकरंद परांजपे ने सवाल किए हैं। उन्होंने पूछा है कि क्या भाषण देने से पहले कन्हैया ने तथ्यों की जांच की थी। परांजपे ने कहा, 'कन्हैया ने अपने भाषण में कहा कि गोलवलकर मुसोलिनी से मिले थे। क्या आपने तथ्यों को जांचा? मुसोलिनी से मुंजे मिले थे।' परांजपे के भाषण के दौरान कन्हैया कुमार ने नारे लगाए। जिसके बाद परांजपे ने सवाल उठाया कि जब हम खुद को लोकतांत्रिक मानते हैं तो यह सोचने की भी जरूरत है कि क्या यह वाकई सच है। क्या यह वामपंथी प्रमुखता वाले लोगों की जगह बन गई है, जहां यदि आप असहमत होते हैं तो आपको चुप कर दिया जाता है या आपका बहिष्काहर कर दिया जाता है।' जेएनयू में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (एबीवीपी) के समर्थक छात्र बताते हैं कि परिसर में हमलोग स्वयं को उपेक्षित महसूस करते आए हैं। वामपंथी रूझान वाले छात्र संगठन यहां मजबूत हैं और उन्हें अकादमिक स्तर पर भी काफी प्रोत्साहन मिलता है, इसलिए वे मजबूत हैं। चूंकि अब एबीवीपी के समर्थक खुलकर सामने आने लगे हैं और वामपंथियों को चुनौतियां मिल रही हैं तो टकराव की स्थिति पैदा हो गई है।

○

नई दुनिया में प्रकाशित लेख

# राष्ट्रघात है विरोध की ऐसी राजनीति

**• प्रदीप सिंह**

जम्मू-कश्मीर में सात मार्च की रात सुरक्षा बलों ने हिजबुल मुजाहिदीन के कमांडर दाउद अहमद शेख को एक मुठभेड़ में मार गिराया पिछले कुछ दिनों में सुरक्षा बलों को आतंकियों के खिलाफ ऐसी कई सफलताएं मिली हैं इसके बावजूद सुरक्षा बल चिंतित हैं उनकी चिंता का कारण है आतंकवदियों के जनाजे में लोगों की उमड़ती भीड़ ऐसी भीड़ तो मुख्यमंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद के जनाजे में भी नहीं दिखी। हैदराबाद यूनिवर्सिटी और जेएनयू में पिछले दिनों हुई घटनाओं को इस संदर्भ में देखना जरूरी है आखिर वे कौन लोग हैं जिन्हें आतंकियों के साथ खुलेआम खड़े होने में कोई संकोच नहीं है? देश के राजनेताओं को आखिर यह खतरनाक प्रवृत्ति क्यों नहीं दिख रही? क्या भाजपा, आरएसएस व नरेंद्र मोदी का विरोध करने के लिए वे सचमुच इस हद तक जाने को तैयार हैं? कश्मीर में तो हालात यहां तक पहुंच गए हैं कि आतंकियों को सुरक्षाबलों से बचाने के लिए युवक अपनी जान देने को तैयार हैं वे आतंकियों व सुरक्षाबलों में चल रही मुठभेड़ की जगह पर न केवल सुरक्षा कवच की तरह खड़े हो रहे हैं, बल्कि पथराव भी कर रहे हैं राज्य पुलिस के अधिकारी कहते हैं कि ये आतंकवाद के ग्लैमराइजेशन के कारण हो रहा है जिसका ताजा पोस्टरब्वॉय है २१ वर्षीय हिजबुल कमांडर बुड़हान मुजफर वानी। नवंबर में कुलगाम में सुरक्षा बलों ने लश्कर-ए-तैयबा के कमांडर कासिम को एक मुठभेड़ में मार गिराया था उसके जनाजे में तीस हजार लोग शामिल हुए उसके मारे जाने के विरोध में कुलगाम तीन दिन तक बंद रहा राज्य सरकार को यह आदेश जारी करना पड़ा है कि सुरक्षा बलों और आतंकियों के बीच मुठभेड़ वाली जगह से ढाई-तीन किमी के दायरे में एकत्रित होना निषिद्ध है आतंकवाद विरोधी कार्रवाइयों में शामिल अधिकारियों का कहना है कि घाटी की तीसरी पीढ़ी बंदूक की ओर आकर्षित हो रही है क्या यह महज इत्तफाक है कि हैदराबाद में रोहित वेमुला और उसके साथी और जेएनयू में कन्हैया कुमार के साथियों को याकूब मेनन, मकबूल बट और अफजल जैसे आतंकवादियों के प्रति इतनी सहाननुभूति है कि वे उनकी बरसी ऐसे मनाते हैं जैसे वे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हों यह इत्तफाक नहीं हो सकता इसके पीछे जरूर कोई गहरी साजिश है यह दलितों या मुस्लिमों के हक की लड़ाई नहीं है यह देश को तोड़ने का अभियान है, जिसके शिकार बहुत से छात्र हो रहे हैं - कुछ जानबूझकर और कुछ अनजाने में युवा और खासतौर से छात्र हमेशा से प्रतिष्ठान विरोधी रहे हैं ऐसा करना उनका जनतांत्रिक अधिकार है, लेकिन जनतंत्र हो या और कोई व्यवस्था वह देश को तोड़ने का अधिकार नहीं देती अगर यह नारा लगे कि भारत की बर्बादी तक जंग

रहेगी, जंग रहेगी तो इसे युवाओं व विद्यार्थियों का प्रतिष्ठान विरोधी स्वाभाविक व्यवहार नहीं माना जा सकता। इन युवकों के व्यवहार से भी ज्यादा खतरनाक है उन राजनीतिक दलों का रवैया जो उनका समर्थन कर रहे हैं ये राजनीतिक दल इन छात्रों की जाति और आर्थिक स्थिति को उनके कवच के तौर पर पेश कर रहे हैं अगर रोहित वेमुला याकूब की फांसी का विरोध करते हुए उसका महिमामंडन करता है तो इस बात का उसके दलित होने से क्या संबंध है? इसी तरह यदि कन्हैया देश की बर्बादी का नारा लगाने वालों के साथ खड़ा है और उन्हें निर्दोष बता रहा है तो इसका उसके परिवार की गरीबी से क्या संबंध? कन्हैया एक ही सांस में दो बातें कहता है एक यह कि वह देश विरोधी नारों से सहमत नहीं है और दूसरी, नारा लगाने वाले निर्दोष हैं वे निर्दोष हैं या नहीं, यह तय करना तो अदालत का काम है कन्हैया और उसके साथियों को बताना पड़ेगा कि वे देश को तोड़ने का नारा लगाने वालों के साथ हैं या खिलाफ? जो लोग इनका समर्थन कर रहे हैं, उन्हें सोचना चाहिए कि आतंकवादियों और देश तोड़ने की बात करने वालों को नायक बनाने की कोशिश करके वे किसका भला कर रहे हैं जब ऐसे लोग कहते हैं कि अफजल की फांसी न्यायिक हत्या है तो वे दरअसल कह रहे हैं कि देश की सरकार ने तय किया कि अफजल को मारना है और देश की न्यायिक व्यवस्था ने उसका साथ दिया आश्चर्य और दुःख की बात तो यह है कि कांग्रेस पार्टी जिसके शासनकाल में मुकदमा चला और अफजल को फांसी दी गई वह भी इन लोगों के साथ खड़ी है मोदी विरोध के चक्कर में कांग्रेस ऐसी जगह पहुंच गई है, जहां वह अपने ही विरोध में खड़ी नजर आ रही है वह राजनीतिक विरोध और देश विरोध के फर्क को समझने को तैयार नहीं है बुद्धिजीवियों का एक वर्ग भी दुविधा में है उसे लग रहा है कि इस मसले पर जेएनयू के आरोपी छात्रों के खिलाफ बोलने पर उन्हें सांप्रदायिक मान लिया जाएगा हर देश के इतिहास में ऐसे मौके आते हैं जब आपको किसी एक पक्ष में खड़े होना चाहिए देश रहेगा तो ही सांप्रदायिकता-पंथनिरपेक्षता की बहस रहेगी देश को तोड़ने की बात करने वालों के साथ कोई कैसे खड़ा हो सकता है? दिल्ली हाई कोर्ट की जज प्रतिभा रानी ने कन्हैया को सशर्त जमानत देते हुए अपने फैसले में चेताया है कि इस बीमारी के गैंगरीन बनने का खतरा है उस समय ऑपरेशन के अलावा कोई विकल्प नहीं रहेगा यह समय तटस्थ रहने का नहीं है।

○

Published in Times of India

# Blood in the red salute: Kanhaiya Kumar should seek azadi from factual and historical howlers too

**• Vaibhav Purandare**

Azadi from historical untruths and factual howlers will hopefully figure among the many azadis that Kanhaiya Kumar wants in India. On his release from jail on conditional bail, Kanhaiya received a rousing welcome on the JNU campus and delivered what many thought was a stirring speech. While he fiercely attacked the Modi government, understandably so as he chants 'lal salaam' and subscribes to the ideology of the Left, the JNU students' union president also made quite a few references to history.

He said, for instance, that Babasaheb Ambedkar wanted not just political democracy but social democracy in the country. He was right there, but only partially. What Kanhaiya did not state was that while advocating social democracy, Ambedkar strongly disapproved of the idea of 'revolution', Kanhaiya's favourite word at least at present (cries of 'kranti' and 'inquilab' frequently punctuated his speech).

The way to bring about change in independent India, Ambedkar said, was by adopting constitutional methods. Decrying "the bloody methods of revolution", Ambedkar was of the view "these methods are nothing but the Grammar of Anarchy and the sooner they are abandoned, the better for us".

Kanhaiya also said, taking a dig at Modi for the PM's reference to Stalin and Khrushchev during his parliamentary speech, that the 'guru' of Hindu nationalists, M S Golwalkar, had met Mussolini during the Fascist leader's reign in Italy. Here he was completely wrong.

No meeting ever took place between Mussolini and Golwalkar. Kanhaiya may have an acute dislike for Golwalkar - as this second sarsanghchalak of RSS and leading Hindutva ideologue positioned himself far more aggressively against socialism than the first sarsanghchalak, K B Hedgewar - but he has mixed up things here. It was B S Moonje, president of the Hindu Mahasabha in the late 1920s and RSS backer, who met Mussolini in March 1931 on his return from the Round Table Conference.

Moonje was much impressed by what he saw as the 'discipline' of the Fascists. Hedgewar set great store by Moonje's views, and we have reason to believe that he was influenced by Moonje. Just three months before that, in December 1930, Mahatma Gandhi had met Mussolini and praised him as a "great personality" for his "care of the poor", "opposition to super-urbanisation", "his efforts to bring about coordination between capital and labour" and "his passionate love for his people".

The admiration was mutual: Mussolini described Gandhi as "a genius and a saint". The other big Indian leader who met the Italian dictator after Gandhi (Rabindranath Tagore had met him earlier, in 1926) was Subhas Bose, who even got Mussolini to agree to a declaration in favour of independent India in 1942 (the other Axis powers rejected the idea).

Kanhaiya heaped praise on Lenin during his speech and got plenty of cheers from the assembled JNU crowd when he quoted Lenin on democracy. But the myth of Lenin as the 'good revolutionary' was completely shattered by historians after Russian archives were opened post-1991. Lenin was no upholder of liberal democracy but saw it as a system of the hated bourgeoisie. He was in fact the man who paved the way for Stalin's excesses.

Stalin was not the 'betrayer of the revolution', as Communists would have us believe; he was merely carrying forward what Lenin had initiated: a ruthlessly dictatorial one-party state, a secret service that would eliminate political adversaries, concentration camps, and a system that stifled dissent, muzzled the press and intimidated non-conformist intellectuals, and that in every way signified the word Lenin himself used - terror.

"It is necessary secretly - and urgently - to prepare the terror," Lenin wrote in 1918. He ordered the hangings of 100 welloff peasants, labelled as 'kulaks', in the same year: "Do it in such a way that for hundreds of versts around, the people will see, tremble, know, shout: they are strangling and will strangle to death the bloodsucker kulaks."

And here's how Lenin wanted the Russian Orthodox Church looted and the clergy executed: "It is precisely now and only now, when in the starving regions people are eating human flesh, and hundreds, if not thousands, of corpses are littering the roads, that we can (and therefore must) carry out the confiscation of church valuables with the most savage and merciless energy, not stopping (short of) crushing any resistance … The greater the number of representatives of the reactionary clergy and reactionary bourgeoisie we succeed in executing for this reason, the better."

The historian Robert Conquest, who called Stalinism "a natural evolution of Leninism", famously wrote a poem that read: "There was a great Marxist called Leninè Who did two or three million men inè That's a lot to have done inè But where he did one inè That grand Marxist Stalin did ten in."

Much more can be quoted, but that is not the point. The point is that Lenin and Ambedkar's points of view are inherently and utterly irreconciliable, and Lenin is in the same tradition of Hitlerism that Kanhaiya Kumar was so bitterly critical of in his speech. If India is to have Leninism, the next step to look forward to will be Stalinism which tramples upon everything that is human, and not the constitutional morality that Ambedkar wanted every Indian citizen to develop. ❍

## रोहित वेमुला के दलित होने की अफवाह किसने फैलाई?

**● शिवानन्द द्विवेदी**

जो सच हो वही खबर भी बने ऐसा बिलकुल जरुरी नही है। कई बार जो खबरों में छाई बात होती है वो सच नही होती है। पिछले डेढ़–दो महीनों में एक बड़ी अफवाह जो फैलाई गयी है वो ये है कि हैदराबाद यूनिवर्सिटी में आत्महत्या किया एक स्टूडेंट एसोशिएसन का कार्यकर्ता रोहित वेमुला दलित था। खैर, पहले तेलंगाना पुलिस और अब तेलंगाना के गृहमंत्री नयनि नरसिम्हा रेड्डी ने साफ कर दिया है कि रोहित वेमुला श्दलितश नही था हैदराबाद विश्वविद्यालय में दलित कोई मुद्दा नही है। गृहमंत्री का यह बयान विधानसभा में 'ऑन–रिकॉर्ड' दिया गया है। आश्चर्य की बात है कि रोहित वेमुला मुद्दे पर पैनी नजर लगाए बैठी मुख्यधारा की मीडिया की नजर इस महत्वपूर्ण बयान पर नही गयी अथवा गयी भी तो इसे क्यों दिखाया नही गया, यह समझ से परे है। गूगल पर इस खबर से जुड़े 'की–वर्ड' को सर्च करने पर स्थिति नदारद ही नजर आती है। कहीं ऐसा तो नही रोहित वेमुला मामले में एक झूठ को सच साबित करने और उस अफवाह को हवा देने को लेकर एका की स्थिति उत्तर भारत में देखी और पढ़ी जाने की मीडिया में भी है। वरना जिस मुद्दे पर मीडिया की श्पैनी–नजरश लगी हो उस मुद्दे से जुडी एक तथ्यात्मक खबर कैसे छुट जाती?

अब बड़ा सवाल है कि आखिर जिस छात्र की दुखद आत्महत्या को इस देश में श्दलितश शोषण का इतना बड़ा मुद्दा बनाया गया, क्या वो एक अफवाह फैलाने का साजिश मात्र थी? क्या यह रोहित की लाश को दलित का जामा पहनाकर सियासत की फसल काटने के लिए तैयार की गयी उर्वरक जमीन भर थी? निश्चित तौर पर रोहित वेमुला की आत्महत्या पर सियासत हुई है लेकिन इस कदर अफवाह फैलाकर सियासत करना तो सियासत को ही शर्मसार करता है। खैर, सियासत का तो काम है सियासत करना, मगर मीडिया क्या कर रही है? यह किसी से छुपा नही है कि रोहित वेमुला की आत्महत्या के पहले दिन से ही मीडिया की खबरों में रोहित वेमुला को दलित छात्र के रूप में स्थापित किया जा रहा है। बीच–बहस में अगर रोहित के दलित न होने की बात भी उठी तो मीडिया के एक पक्ष ने उसे एक बयान अथवा दावे के रूप में दिखाकर अपना पक्ष रखते हुए रोहित को दलित ही बताया! जबकि तथ्यात्मक पहलू देखें तो जब पुलिस ने हाईकोर्ट में जो रिपोर्ट दाखिल की थी उसी दौरान यह साफ हो गया था कि रोहित वेमुला दलित नही था। ऐसे में बड़ा सवाल है कि बिना तथ्यों को जाने रोहित को श्दलितश छात्र के रूप में प्रचारित करने से जुड़े इस अफवाह में सियासतदानों के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर चलने वाली मीडिया को किस श्रेणी में रखा जाय? सबकुछ स्पष्ट होने के बाद भी मीडिया का एक बड़ा धड़ा आज भी रोहित वेमुला के नाम के साथ दलित शब्द का प्रयोग कर रहा है अथवा जो नही बोल रहे हैं वे चुप्पी साधे हुए है। क्या उन मीडिया समूहों ने यह तय कर रखा है कि वे हर हाल में इस झूठ को सौ बार बोलकर सच साबित करके ही रहेंगे! मीडिया का यह दायित्व है कि वो तथ्यों के आधार पर बताये कि रोहित वेमुला के दलित होने की खबर गलत है। चूँकि रोहित की माँ को दलित प्रमाण–पत्र देने वाले गंटूर जिले के स्थानीय प्रशासन से जब इस बाबत पूछताछ हुई तो उन्होंने भी अपनी गलती स्वीकार करते हुए यह मान लिया है कि रोहित वेमुला दलित परिवार से नहीं आता है। अब इस अफवाह पर लगाम लगाते हुए जनता को सच बताने की जरुरत है। गृहमंत्री के बयान को भी उतनी ही अहमियत से दिखानी चाहिए जिस अहमियत से इस झूठ को फैलाया गया। ■

Published in DailyO.in

# Forget Che, Kanhaiya not even a Kejriwal if he insults Indian Army

**• Vipin Damodharan**

Kanhaiya Kumar went to jail on the charges of sedition after the alleged pro-Afzal Guru event at Jawaharlal Nehru University (JNU). He was granted interim bail for six months by the Delhi High Court on conditions, and got a heroic reception from the students at the campus on March 3.

Soon after that, he made a prolific and electrifying speech at the campus which was grand enough to catch the imagination of pro-Left students, and of course provide fodder for the media to satisfy their hunger for sensational newsroom wars. Gaining some consciousness, he declared, "My role model is Rohith Vemula, not Afzal Guru." I am not going to explore the sense or senselessness of the role model statement made by the so-called Indian Che Guevara. But there are certain elements which make Kanhaiya Kumar irrelevant as a leader in the context of India's socio-political ecosystem. The best example was his latest speech in the backdrop of Women's Day. "No matter how much you try to stop us, we will speak up against human rights violations. We will raise our voice against AFSPA (Armed Forces Special Powers Act). While we have a lot of respect for our soldiers, we will still talk about the fact that in Kashmir women are raped by security personnel," Kanhaiya said while addressing some students on March 8.

This statement itself shows the immaturity and provocative nature of the JNU students union president who got bail after the police charged him with sedition. The statement against Indian Army can easily be bracketed under sedition as the context demands it. And the worst part is that after mentioning the rape charges against Indian Army, he talked about the rapes during Rwanda war and ethnic conflicts in Africa. Look at this statement Kanhaiya made, according to an Indian Express report, "During war in Rwanda 1,000 women were raped. In Africa during the ethnic conflict, when military attacks other group firstly their women were raped. You take example of Gujarat; women were not just killed but were raped first."

No matter whatever was his intention, bracketing Indian Army with the likes of Rwanda and Africa for highlighting atrocities against women seems terribly disgusting and painful as far as an ordinary Indian is concerned. Kanhaiya's All India Students Federation (AISF) justified his views in this manner, "He made the remarks in context of atrocities on women worldwide and not just in Kashmir." This is what we call selective outrage over women atrocities and human rights violations.

The isolated charges against the Indian Army in Kashmir would not qualify for a generalised perception as in the case of Rwanda. By highlighting the secluded instances in the Valley, Kanhaiya is intentionally trying to target the Army to achieve his short-term political gains. It is crystal clear from the selection and context of such a statement. What are you trying to say, Kanhaiya? Knowingly or unknowingly, never try to compare the Indian Army with the soldiers of Rwanda and Africa or the insane rioters on the streets of Gujarat who engaged in killing each other in the name of religion. Have you unlearnt about the organised rapes and attacks on women in the border villages of West Bengal in the name of religion? You were fined Rs 3,000 for misbehaving with a girl student of JNU in last October, after she asked you to not urinate in the open inside the campus. What's the point of speaking against women atrocities after indulging in such shameful acts? What's your logic to not raise voice against the brutal rapes of Kashmiri Pandit women two decades back in the Valley? After an organised campaign of religious terror, murder, loot, and arson by Pakistan-sponsored terrorists, lakhs of Kashmiri Pandits were evacuated from their homeland. Could you give a convincing reason why it does not come under your version of human rights violations? And, what about the organised terror against Hindu women in Pakistan who are forced to convert religion or accept death? Like other comrades, you are also a mute spectator of the inhuman occupation of Tibet by China and human rights violations of Buddhist monks. Toeing the lines of clichéd Indian communist leaders, you have crafted your own dictionary for human rights and terror. So, the BJP doesn't need to be worried about the media attention you have been getting since the alleged pro-Afzal event. You will be marked as a temporary phenomenon in Indian politics, if you are going on the lines of pre-defined Left school of thought. Not Indian Che, chances are little for you to become an Arvind Kejriwal.

Published in Dailypioneer

# AZADI BRIGADE AND ITS OPEN, COVERT, BACKERS

**● A. Suryaprakash**

There may indeed be a case for a fresh look at Section 124A of the Indian Penal Code dealing with sedition, but one must not allow this academic debate on the validity of such a provision to cloud the core issue that is before us, namely, the shameful assault on our Constitution and the challenge posed to India's unity and integrity by a bunch of students at the Jawaharlal Nehru University in New Delhi and in the Jadavpur University campus in West Bengal.

Just read the contents of the poster put up in JNU for the controversial event held on February 9 last and you will realise that centrifugal forces have begun to exert pressure on the nation's core. The poster said it was a "cultural evening of protest" (whatever that means) with poets, artists and singers. It said this event was "against the judicial killing of Afzal Guru and Maqbool Bhat; in solidarity with the struggle of the Kashmiri people for their democratic right to self-determination".

Further, it said there would be an art exhibition and a photo exhibition portraying "the history of the occupation of Kashmir and the people's struggle against it". It invited everyone "to join us in protest, in rage against the occupation and in solidarity with the valiant people of Kashmir".

A recent Delhi High Court order on a bail application moved by a student arrested in this connection, quoted the slogans that the students were raising at this alleged cultural evening. Just read them and decide for yourself whether any Indian citizen who stands committed to the unity and integrity of India; who has any respect for our Constitution; and for the soldiers defending our borders, would ever raise such slogans? Here they are:

Afzal Guru, Maqbool Bhat, zindabad'; Bharat ki barbadi tak jung rahegi, jung rahegi; Go India, Go Back; Indian Army murdabad; Bharat tere tukkde honge, Inshaallah, Inshaallah; Afzal ki hatya nahi sahenge, nahi sahenge; and finally, Bandook ki dum par lenge azadi.

The High Court judge was apprised of the sequence of events leading to the controversial incident on February 9. A group of students initially sought and secured permission for a 'cultural evening' at the Sabarmati Dhaba in JNU campus. Later, JNU authorities realised that some mischief was afoot when they saw the posters put up in all the hostels. These posters referred to the 'judicial killing' of Afzal Guru and Maqbool Bhat. Apprehending trouble, the university authorities cancelled the permission given to the organisers and also called in the police. That evening 'the shouting of anti-national slogans continued unabated.

The High Court was also given a set of photographs which showed students holding posters with photographs of Afzal Guru, who was one of the masterminds behind the attack on India's Parliament in December 2001. In other words, in the name of 'democracy' and 'free speech', they were espousing the cause of a terrorist who planned the assault on our temple of democracy!

The posters put up in Jadavpur University went even further. One poster said: "Hum kya chahe - Azadi: Kashmir ki azadi; Nagaland ki azadi; Manipur ki azadi" .

Shockingly, there are professors in JNU and elsewhere who claim that these slogans fall within the ambit of 'freedom of expression' guaranteed under Article 19(1)(a) of the Constitution!

Referring to the slogans raised in JNU, Justice Pratibha Rani of the Delhi High Court said: "Suffice it to note that such persons enjoy the freedom to raise such slogans in the comfort of the university campus but without realising that they are in this safe environment because our forces are there at the battlefield situated at the highest altitude in the world where even oxygen is so scarce that those who are shouting anti-national slogans holding posters of Afzal Guru and Maqbool Bhat close to their chest honouring their martyrdom, may not be even able to withstand such conditions for an hour..."

Further, the judge observed that such slogans may have a demoralising effect on the family of martyrs who return home in coffins draped in the Tricolor.

The judge was even more trenchant when dealing with anti-national slogans raised in the university campus. She said those shouting such slogans cannot claim protection of the fundamental right to freedom of speech and expression. Whenever there is an infection in a limb, the first effort is to cure it through antibiotics, followed by a second line of treatment. "Sometimes, it may require surgical intervention also. However, if the infection results in infecting the limb to the extent that it becomes gangrene, amputation is the only treatment."

Many pseudo-secularists, who are now doubling up as pseudo-nationalists, are unable to stomach the rapier-like thrust of the learned judge's observations and are trying to belittle her by saying that she had delivered a sermon when called upon to pass an order on a bail application. Some others have been even more uncharitable, but their objections need to be brushed aside, because they are unwilling to address the primary issue and punish the original sinners who were mocking at the Constitution of India and the country's unity and integrity.

Frustrated by the drubbing that the communist parties received in the Lok Sabha poll of 2014 (total vote share: four per cent ), they have been orchestrating many campaigns against the Narendra Modi Government ever since it came to power in May, 2014. Such is their desperation that they have now begun to support groups espousing fissiparous ideas. As a result, the Hate-Modi Campaign is now slowly turning into a Hate-India campaign.

An 'eminent jurist', while stating the legal position, has gone on record to say that it is not a criminal offence to be anti-national. Similarly, it can be argued that no citizen is legally bound to remain committed to the unity and integrity of India. If the provision relating to sedition is out-dated, how come none of those supporting these students, has suggested legislative measures to enforce loyalty to the Constitution?

Are there no limits to tolerance? Is it too much to ask a citizen to remain loyal to the country's Constitution, its flag, its unity and integrity? Can India, which is such a diverse society, survive this kind of permissiveness? We are all aware that there is a lunatic fringe towards the left of our political spectrum. Should we allow it to occupy centre-stage and gnaw at the vitals of the most liberal, democratic and plural nation in the world?

○

# IIT-IIMian asks 10 Questions for Kanhaiya lovers

● **Sanjeev Newar**

Published in agniveer.com

10 questions for Kanhaiya Kumar and his fans. Whosoever is announcing kanhaiya Kumar as a prophet and an avatar, 20 questions for them all. Cannot guarantee spring in paradise for those who give correct answers, but they can definitely get some relief from their daily thrashings they receive.

**1st question:**

If freedom from poverty is required then why a member of CPI? Have the communists made Bengal the most wealthy state in last 40 years? Why is your report card so third class? And you Mr Kanhaiya Kumar, the region of Bihar you come from, Teghra constituency, for the last 50 years, its the fort of communists of CPI of which you are member. So why is there so extreme poverty and hunger? Why is the gender ratio there so less than that of India? And that too when you pretend to be emphatic supporter of women rights?

**2nd question:**

You give so much respect to democracy. And then communists!?! Which one communist country exists entire world where there's not dictatorship along with communism? Do you intend to turn India into a China or a North Korea?

**3rd question:**

If you have so much respect for women, then why are you absolutely silent on gang rapes committed by naxalite communists with their women comrades? Why have you not spoken even a word against them till today? And why were you peeing in open by zipping down pants in presence of women?

**Question 4.**

Why are you singly devoted to Manusmriti, why burn Manusmriti only? According to the available translations, Quran and Bible also say derogatory things about non-Muslims and women. Where does your spirit of 'sarva dharma sambhaav' (all religions are equal) wander off while burning the books? In order to burn it, you have to first download from Internet, then print the copy of Manusmriti, since it's not even available easily anywhere in markets. While

Quran and Bible are available free of cost at many places! Then why this partiality in burning? Is it the case that to poke Hindus is similar to playing games on Playstation (full of fun, and safe), but are afraid of saying anything to anyone other than Hindus. Or is there some other issue…?

**Question 5.**

You pretend to demand azadi (freedom) for women to make any relation with anyone with or without marriage; wear any clothes they like, sleep or wake with anyone they like. So now which law of Nation is stopping anyone ?!? And why are you silent against Muslim Personal Law, where to even think about these things is a crime! According to Sharia Law, if a woman even thinks like this, then she deserves to be stoned to death according to this Sharia Law. And even today in Arab countries this happens. Or is it the case that regarding women's marriage, you are unhappy because of some other scandal…I apologize, I meant some other reason..?

**Question 6.**

You want azadi to call Durga as a prostitute. For this you organize a program of Mahisasur Day. So why dont you also organize a cartoon competition for drawing Messenger? If some Kamlesh Tiwari said something to Messenger then why don't you execute a rally in support of Kamlesh Tiwari? The way you called Durga a prostitute, he similarly happened to call Messenger something. While you are out and enjoying, that Kamlesh is in Jail for months. Against Kamlesh, rallies are happening in every corner of country where Jihadis are demanding to behead Kamlesh Tiwari! So when are you raising your voice in support of Kamlesh Tiwari's azadi? When are you gonna challenge Jihadis like you do Hinduvadis?

**Ques 7.**

You respect constitution. A new slogan you have adopted of 'Jai Samvidhan'(Hail the Constitution) after High Court's scolding. In the very constitution's Directive Principles, it's mentioned to ban cattle killings. Why do you then get bouts of epilepsy? Why are you organizing beef parties?

**Q8.**

Wy do you support terrorists like Afzal, Ashfaq, Maqbool? Why do you support Kashmir's azadi (separation)? and if you dont, then why are you demanding release of Anirban and Umar Khalid [who have confessed to supporting these]? And if you do, then why are you doing this fake drama of respecting Nation's constitution and law?

**Q9.**

Will you say yourself that whosoever raised these solgans of 'Kashmir be liberated from India!', 'India will be broken down to to pieces, allah willing, allah willing!' , 'Afzal we are ashamed that your killers are still alive!', 'Will achieve liberation through arms and weapons! (Bandook ke dum par lenge azadi!)', are all traitors and pigs? That their direct or indirect supporters are enemies of nation. That they should be given strictest of punishments. When will you say this?

**Q10.**

In Kerala, evey week there are murders being committed by your communists. Every week in Nation some RSS workerè some BJP volunteerè some BajrangDal workerè some Hindu, is being killed either by Communists or by Jihadis. When will you call these Communists and Jihadis as dogs? The way your party calls the Hinduvadis as the same. When will you hold a rally to commemorate them like your party holds for commemorating Afzals and Yakubs?

○

Published in dailypioneer

# SUBJUGATE-INDIA TO BREAK-INDIA

**Anirban Ganguly**

The communists' dubious role during the country's freedom-struggle is well-known. The comrades had gone overboard in pleasing the British and running down freedom-fighters, including those in the Congress. Not surprisingly, the Leftists side with anti-nationals today

A certain officer in the then colonial Government in India had once pithily observed that the communists are the sort of the people who must always be "anti" something rather than "pro" anything (except, perhaps, themselves and a shadowy entity called 'the people'. Ironically, it is in the name of this very entity called 'the people' that communists have carried out some of the greatest genocidal acts in history and continue to indulge in the politics of violence and hate.

It was the early days of the Quit India movement that the top leadership of the Communist Party of India had begun its hyper-active phase in trying to prove its loyalty to the British by offering its services to His Majesty's Government in India in support of its effort to try and quell the reactionaries (read the Congress) forces who were being misled by Mahamta Gandhi's coterie. Those were the days when the comrades referred to the "Congress fifth-column", as "treacherous agents of Fascist imperialists".

Throughout the Quit India drive, the comrades assiduously worked to wean away the people' from the influence of the 'fifth-columnists'. Therefore, the propaganda-laden editorials that continue to appear in the some of the communists mouthpieces today and which keep harping on the falsehood that the RSS had no role to play in the freedom movement, is actually a diversionary tactic adopted by the Indian communists to blanket their own collaborationist past, when the likes of PC Joshi and others were forever willing to oblige their White masters by running up to them, kowtowing and writing copious notes in trying to explain how the cadres had sincerely toiled — not to liberate the masses but to serve their imperialist masters in strengthening their stranglehold on the Indian people.

Stacks of files and heaps of reports still remain confined within archives all over India that could shed light on the dark collaborationist past of Indian communists. Their collaboration in the past was with the subjugate-andenslave India forces, while their collaboration in the present is mainly with the break-India forces. The events of the past month have reinforced this shameless trajectory. Such a duplicitous, forked-tongued approach has always defined communists the world over. The Indian communists were simply following in the rut designed by their illustrious international predecessors. Blood, gore, violence and genocide has defined the world history of communism.

No relationship, no filial tie, no societal bonding, remained sacrosanct under the 'dictatorship of the proletariat'. Joseph Stalin's NKVD, for example, employed around 3,66,000 people to constantly look for and liquidate the "enemies" of the people like "noxious insects", while the communist party made 'denunciation' an everyday practice, not so much for ideology as for personal advancement. This greed for denunciation and self-advancement destroyed relationships, tore apart families and smothered human connections in countries under a prolonged dominance of the communist system.

It was under the communist system that the state became an entity or a formation which acted against its own people. Stalin's gulags, Pol Pot's killing fields of Cambodia, Mao's Great Leap and his cultural revolution, and, in our time, the Nandigram killings, all fall in the same pattern and framework of a state operating against its own people.

The liquidation of political and intellectual opponents by dubbing them as class enemies who need to be crushed like "noxious insects" as the 'liberator' Lenin had once observed, again in the name of the people, introduced the dimension of, as one observer noted, "animalisation" within the political narrative. It was this 'animalisation' of the opponent or of ordinary people who had no particular inclination to or attachment with the ideals of communism, that led to the institutionalisation of violence. The communists killed you not because of what you did, but simply because of who you were or because of what you believed in. It is said that while Tsarist Russia carried out 6,321 political executions between 1825 and 1917, the liberated Russia under the comrades, while taking on the 'compradors', had in just over two months in 1918, eliminated 15,000 people. The approach continued and was further refined and widened. For example, the collectivisation famine during 1932-33 saw six million people die; the Great Purge saw 7,20,000 executed; seven million were consigned to the Gulags between 1934-41; while the Great Leap saw 20 million die from a politically-engineered famine.

Within this praxis, the political opponent or the opposing intellectual had to be crushed, most often through physical violence. Physical liquidation was a legitimate aspiration for clearing the roadblocks towards the proposed paradise of the proletariat. Competition to liquidate the 'enemy of the people' was also accepted within this smoke-world of communism where each liberator tried to outdo the other by proving their allegiance to the 'revolution'. The Paris-educated member of the French Communist Party, Pol Pot, tried to outdo the 'legends' of Mao and Stalin in his killing fields of Cambodia. Yet in the late sixties and early seventies, when a large number of communist and Left intellectuals were busy supporting the students' agitation against Charles de Gaulle, no mention was made of the genocides that were inspired by "peoples' struggle" in communist countries, and no mention was made, of course, of Pol Pot, who was assiduously putting together his world of freedom — orazadi, as some would say in India today.

Communists have always excelled at using extreme violence as a means for extending political hegemony and control. In the West Bengal of the 1970s and up until much later — till about 2007 and 2010 — the comrades used political violence to silence and liquidate opponents. Cadres were taught that it was necessary and mandatory to kill political opponents. The call for freedom of expression, dialogue and debate were to be confined within the walls of Parliament and the protest areas of Delhi. The more gruesome the murder, the more complete the expression of your allegiance to the 'proletarian revolution'. This explains why Sujith was hacked to pieces in front of his infirm parents and why Master Jayakrishnan had to be butchered in front of his students.

Intolerance towards dissent, towards legitimate demand, is a very communist trait. In West Bengal, it was put into operation the moment the comrades came to power. Five workers at Kidderpore Dock in Kolkata, for example, were gunned down on October 30, 1979, just because they were demanding better wages. In Nandigram, as early as 1982, when the communist messiah in India, Jyoti Basu, ruled, eight villagers were shot because they were agitating for greater development in the surrounding neighbourhood. One of them was an eight-year old boy who had joined the demonstration.

Three decades of false proletarianism in Bengal is replete with such heart rending stories of blood and death. It is time to consign such an ideology and its false practitioners, as Trotsky would say, into the "ash heap of history". Thereby lies trueazadi.

S P M R F
पराक्रमयुता प्रज्ञा राष्ट्राभ्युदयसाधिका
Wisdom with valour brings glory to the nation

# Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

https://web.facebook.com/spmrfoundation

https://twitter.com/spmrfoundation